CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri ज्ञा : 1/13

मुसलमान और भारतीय संगीत

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भारतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

२·३

...लय
...णसी-५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

प्रेमलता शर्मा
१३.२.२२

आ॰३/१३
आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्नाय—ग्रन्थालय,
भारतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

मुसलमान और भारतीय संगीत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुसलमान और भारतीय संगीत

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भारतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

आचार्य बृहस्पति

राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली पटना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्नाय-ग्रंथालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

मूल्य : रु. 30.00

© आचार्य बृहस्पति

प्रथम संस्करण : 1974
द्वितीय संस्करण : 1982

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड,
8, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-110002

मुद्रक : रुचिका प्रिंटर्स द्वारा गौतम आर्ट प्रेस,
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

MUSALMAAN AUR BHARTIYA SANGEET
by Acharya Brihaspati

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

...लय–ग्रन्थालय,
...निधि, करौंदी
वाराणसी-5

दो शब्द

आपसी सम्पर्क विभिन्न जातियों को परस्पर प्रभावित करता है। वे एक-दूसरे को अपने गुणों से रिझाती हैं, परस्पर सम्मान करती और कराती हैं। उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में इस लेखक के प्रपितामह महापण्डित स्वर्गीय दत्तरामजी ने रामपुर में एक 'शिवालय' का निर्माण कराया, जिसकी आधारशिला रामपुर के नवाब कल्वे अली खाँ ने रखी। यह तथ्य रामपुर के नवाबों की सहिष्णुता, उदारता और गुणग्राहकता का परिचायक है। काव्य-कला में स्व. दत्तरामजी महाकवि ग्वाल के गुरुवन्धु थे और खुशहालरायजी के शिष्य। 'सदारङ्ग' के वंशजों का दुर्लभ सत्सङ्ग उन्हें वाल्य-काल से ही मिला था। दाग़, ग़ालिब और अमीर जैसे महाकवियों के सौहार्द का सौभाग्य उन्हें प्राप्त था। 26 एप्रिल 1857 ई. को प्रसिद्ध सुरसिंगार-वादक बहादुर हुसेन ख़ाँ ने रामपुर-दरबार का आश्रय लिया, उस समय दत्तराम-जी की आयु अड़तालीस वर्ष थी, और वे रामपुर दरबार के एक देदीप्यमान रत्न थे। संगीत और साहित्य के विलक्षण मर्मज्ञ दत्तरामजी के साथ बहादुर हुसेन ख़ाँ स्नेह-वन्धन में बँध गये, क्योंकि दत्तरामजी के पूर्वजों के साथ बहादुर हुसेन ख़ाँ के पूर्वजों का सख्य-सम्बन्ध रहा था और 'संगीत-रत्नाकर' जैसा ग्रन्थ आनुवंशिक रूप में इन लोगों के विचार का विषय था। स्व. दत्तरामजी ने संगीत के क्षेत्र में नवाब मिर्ज़ा और साहित्य एवं धर्मशास्त्र के क्षेत्र में महापण्डित चन्द्रसेन जैसे शिष्यों का निर्माण किया। बचपन में ही पिता की छत्रच्छाया से वंचित हो जाने के कारण इस अकिंचन को अपने वंश की विद्या इन दोनों विभूतियों के माध्यम से मिली। नवाब मिर्ज़ा संगीतजीवी नहीं, सैयद थे, परमगुह्य 'राग-तत्त्व' का सप्रयोग प्रशिक्षण इन पंक्तियों के लेखक को, पूज्य मिर्ज़ा साहब ने ही दिया। शोध के विषय में भी उन्हीं की उक्तियाँ आज तक प्रेरणास्रोत हैं, जिनकी चर्चा 'भरत का सङ्गीत-सिद्धान्त' की भूमिका में की गयी है। यह विनम्र कृति इन पूर्वजों के तर्पण के लिए बाल-चापल्य मात्र है।

यह पुस्तक अभीष्ट दिशा में एक प्रारम्भिक प्रयत्न है, अतः इसका दोषपूर्ण होना स्वाभाविक है, तथापि सङ्गीतानुरागियों को इसमें कुछ भी सामग्री मिली तो मेरा प्रयत्न सफल है।

मेरी गृहिणी, सचिव, सखी और ललितकला में प्रिय शिष्या सौभाग्यवती श्रीमती सुलोचना यजुर्वेदी यदि अपने पूर्ण अधिकारों का सक्रिय उपयोग न करतीं, तो इस पुस्तक का लेखन असम्भव था और 'राजकमल प्रकाशन' की दृष्टि इस ओर न जाती, तो इसका प्रकाशन दिवास्वप्न। मैं तो प्रयोज्य कर्ता हूँ, श्रेय प्रयोजक-कर्त्ताओं को मिलना चाहिए, हाँ त्रुटियों के लिए मैं उत्तरदायी हूँ।

आशा है, इस पुस्तक से कुछ भ्रान्त धारणाओं का उन्मूलन होगा और सत्य का संस्थापन।

बृहस्पति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

भूमिका

अजमेर में ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती और दिल्ली में शेख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती की दरगाह पर 'क़व्वाल' लोग गाते-बजाते हैं।

मुहर्रम के दिनों में शिया मुसलमान 'मर्सिये' और 'सोज़' पढ़ते हैं। 'सोज़' राग-रागिनियों में बँधे होते हैं और 'सोज़ख़्वाँ' (सोज़ गानेवाले) लोग तानपूरे के साथ विधिवत् अभ्यास करते हैं।

अच्छे ख़याल-गायकों को भी 'सोज़' याद होते हैं, मुहर्रम के दिनों में यद्यपि मुसलमान कलाकार गाते-बजाते नहीं, तथापि 'सोज़' पढ़ते हैं।

भातखण्डेजी ने अनेक स्थानों पर लिखा है कि मुसलमानों ने भारतीय संगीत को अत्यन्त प्रभावित किया है।

ये सब बातें इस बात की ओर संकेत करती हैं कि 'इस्लाम' के साथ गाने-बजाने का सम्बन्ध किसी-न-किसी रूप में है।

इसके विपरीत जब मुसलमानों के सुन्नी सम्प्रदाय का कोई मौलवी यह कहे कि इस्लाम की दृष्टि में संगीत त्याज्य है, इसीलिए औरंगज़ेब संगीत का विरोधी था, तब सामान्य व्यक्ति चक्कर में पड़ जाता है और सोचने लगता है कि संगीत के भक्त ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती और शेख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती क्या इस्लाम का मर्म नहीं समझते थे ? शिया मुसलमान क्या इस्लाम धर्म के तत्त्व से अपरिचित हैं।

आइए, संक्षेप में इस्लाम के इतिहास से परिचय प्राप्त किया जाये।

सभी मुसलमानों की दृष्टि में पूज्य पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद का स्वर्गवास 8 जून, 632 ई. को हुआ और उनके ससुर अबूबकर उनके प्रतिनिधि चुने गये। इन्होंने इस्लामी राज्य के विस्तार का प्रयत्न किया। फ़ारस-विजय का कार्य अबूबकर के उत्तराधिकारी हज़रत उमर के शासन-काल में हुआ। 644 ई. में फ़ीरोज़ नामक एक फ़ारसी गुलाम ने हज़रत उमर का वध उस समय कर दिया, जिस समय वे नमाज़ पढ़ रहे थे। उमर के उत्तराधिकारी हज़रत उस्मान हुए, जिनका वध 656 ई. में उनके महल में ही कर दिया। मुहम्मद साहब के दामाद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हज़रत अली उस्मान के उत्तराधिकारी हुए। अली के विरोधियों ने यह प्रचार किया कि उस्मान के वध में अली का हाथ है और मुआविया के नेतृत्व में विद्रोह किया गया। 660 ई. में अली का भी वध कर दिया गया।

मुआविया बादशाह हुआ, परन्तु अली के वध के कारण अनेक मुसलमान मुआविया के विरोधी हो गये। अली से सहानुभूति रखनेवाले मुसलमान शिया कहलाये। शिया लोगों के विपक्षी खारिजा कहलाये।

680 ई. में अली के पुत्र हुसेन ने स्वयं को खलीफ़ा पद का वास्तविक अधिकारी घोषित किया। मुआविया के पुत्र यज़ीद के साथ हुसेन का विरोध था। कर्बला के मैदान में हुसेन तथा उनके साथियों की हत्या कर दी गयी। इसकी प्रतिक्रिया में मुख्तार नामक एक व्यक्ति ने यज़ीद का साथ देनेवाले तीन सौ व्यक्तियों को मौत के घाट उतार दिया।

इस्लाम को जन्म देनेवाले अरब का यह रक्तरञ्जित इतिहास हज़रत मुहम्मद की मृत्यु के पश्चात् केवल पचास वर्षों में लिखा गया।

आठवीं शताब्दी ईसवी के पूर्वार्द्ध में इस्लाम का अनुवर्तन करनेवाली जनता को कुछ सोचने-समझने का अवसर मिला। विद्या और कला की उन्नति हुई। आठवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में राजवंश परिवर्तित हुआ। फ़ारस-निवासी यद्यपि मुसलमान हो गये थे, तथापि अरब लोगों से उन्हें समान व्यवहार न मिलता था। अली के वंशज विद्रोह का झण्डा उठा रहे थे। नवीं शताब्दी के आरम्भ में खलीफ़ा हारूँ रशीद ने बरमी कुल के विश्वसनीय फ़ारसी व्यक्तियों का वध करा दिया। परिणाम यह हुआ कि फ़ारसवालों ने अरबों से सार्वजनिक रूप में घृणा आरम्भ कर दी।

अब्दुल्लाह बिन मैमून अल्कद्दाह (मृ. 874 ई.) फ़ारस से अरब-साम्राज्य को नष्ट कर देना चाहता था। एक ओर तो वह अली के वंशजों का भक्त था और दूसरी ओर वह फ़ारस से विदेशी साम्राज्य की समाप्ति चाहता था। शिया-धर्मावलम्बी और सभी फ़ारस-निवासी उसके अनुयायी हो गये।

सलमान पारसी ने अब्दुल्लाह का समर्थन किया। वह स्वतन्त्र विचारक था, वह अली को ही हज़रत मुहम्मद का वास्तविक उत्तराधिकारी मानता था। अरब मौलवियों के दृष्टिकोण से उसका मत अनेक स्थानों पर भिन्न था। उसकी दृष्टि में ईश्वर और मानव में परस्पर प्रेम का सम्बन्ध था। नवीं शताब्दी में पवित्र कुरआन की व्याख्या के सम्बन्ध में अनेक मतभेद हो गये थे। आठवीं शताब्दी से हिन्दू गायकों, शिल्पियों, दार्शनिकों और विद्वानों से मुसलमानों का सम्पर्क हो चुका था। अतः नवीं शती के अनेक सूफ़ी मुसलमानों का दृष्टिकोण शासन करनेवाले मुसलमानों से सर्वथा पृथक् था और ये अत्यन्त उदार थे।

मुहम्मद साहब की उक्तियों और उनके जीवन की घटनाओं को देश-देश में घूम-घूमकर सुनानेवाले मुसलमान मुहम्मद साहब के चरित्र का स्मरण और कीर्तन ही परम कर्तव्य मानते थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुरआन की व्याख्या करनेवाले, कुरआन का गम्भीर अध्ययन करके उसका अर्थ समझानेवाले लोगों का वर्ग अलग था। ये लोग कुरआन के पठन-पाठन को ही धर्म का आधार मानते थे।

तीसरा वर्ग सूफ़ियों का था, जो कुरआन का अनुवर्ती होते हुए भी स्वतन्त्र-चेता था। मौलवियों से सूफ़ियों का विचार-सम्बन्धी मतभेद सदैव रहता था।

मुसलमानों के विभिन्न सम्प्रदायों का विस्तृत परिचय देना यहाँ अभीष्ट नहीं, केवल इतना कहना पर्याप्त है कि सूफ़ियों की दृष्टि में ईश्वर के प्रति प्रेम ईश्वर-प्राप्ति का साधन था और गुरु के द्वारा बताये हुए मार्ग का अवलम्बन करने से उनकी दृष्टि में ईश्वरकी प्राप्ति सम्भव है। शेख़ जुनैद बग़दादी (मृ. 911 ई.) और शेख़ अबूबक्र शिब्ली जैसे सूफ़ियों की दृष्टि में ईश्वर के ध्यान में विस्मृत होकर गाना, बजाना, नाचना इस्लाम के अनुसार वैध ही नहीं, आवश्यक भी है।[1]

संगीत को ग्राह्य माननेवाले, चिश्ती परम्परा और सुहरावर्दी परम्परा के सूफ़ी भी भारत आये[2] तथा संगीत को त्याज्य माननेवाले मौलवी या क़ाज़ी भी।[3] संगीत की ग्राह्यता और त्याज्यता के सम्बन्ध में विवाद भी चलता रहा। शम्सुद्दीन इल्तुतमिश के दरबार में हमीदुद्दीन नागौरी और गयासुद्दीन तुग़लक की सभा में शेख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती और मौलाना इल्मुद्दीन ने यह सिद्ध किया कि भक्तिपरक संगीत इस्लाम की दृष्टि में त्याज्य नहीं है।[4]

मुहम्मद ग़ोरी, क़ुतुबुद्दीन ऐबक़, शम्सुद्दीन इल्तुतमिश, गयासुद्दीन बलबन, कैक़ुबाद, जलालुद्दीन खिलजी, अलाउद्दीन खिलजी, क़ुतुबुद्दीन खिलजी, ग़यासुद्दीन तुग़लक, मुहम्मद तुग़लक, फ़ीरोज़ तुग़लक, सिकन्दर लोदी इत्यादि सभी दिल्ली-सम्राटों पर संगीतानुरागी सूफ़ियों का प्रभाव था, इसीलिए संगीत के क्षेत्र में मुसलमानों को अपनी प्रतिभा के प्रदर्शन का अवसर मिला।[5]

बहमनी सुलतानों, मुग़ल-सम्राटों, कुतुबशाही सुलतानों और आदिलशाही सुलतानों पर चिश्ती सूफ़ियों का प्रभाव रहा, इसीलिए इनके दरबारों में भी संगीत को प्रोत्साहन मिला।[6]

चिश्तियों तथा अन्य सूफ़ियों ने लोकभाषा में उपदेश दिये, अतः हिन्दी का विकास हुआ, लोकभाषा का दक्षिणी रूप संस्कृत-संगीत-ग्रन्थकारों के शब्दों में 'तुरुष्क भाषा' और उत्तर भारतीयों में 'दक्खिनी हिन्दी' कहलाया। सूफ़ियों के कारण ही यह लोक-भाषा गेय बन्दिशों का माध्यम हुई।[7]

1. पृ., 27
2. वही, पृ. 20-23
3. वही, पृ. 57, 60
4. वही
5. वही, पृ. 56-62
6. वही, पृ. 55-80
7. वही, पृ. 107-125

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसी प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप ग्वालियर-नरेश मानसिंह तोमर ने ब्रजभाषा को ध्रुवपदों का माध्यम बनाया, जिसके दूरवर्ती परिणाम हुए।[1]

संगीत के शास्त्रीय पक्ष को भी मुस्लिम दृष्टिकोण ने प्रभावित किया।[2] मूर्च्छना के स्थान पर 'मेल' आ गया और संस्कृत के अनेक ग्रन्थ मेल-पद्धति के आधार पर लिखे गये।[3]

मूर्च्छना-पद्धति के गोपन और मेल-पद्धति के प्रचार की पृष्ठभूमि में विशुद्ध धार्मिक एवं राजनीतिक कारण थे। इन कारणों पर विचार करने का समय स्व. भातखण्डे जैसे विचारकों को न मिला। इनका प्रमुख लक्ष्य प्रचलित संगीत को लिपिबद्ध करना और 'बन्दिशों' का संग्रह करके उनके आधार पर मेल-पद्धति से रागों के लक्षण करना था, अतः मूर्च्छना-पद्धति के उपलब्ध ग्रन्थों को इन्होंने अस्पष्ट कहकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझी और भावी पीढ़ी की दृष्टि में भी भरत, मतङ्ग और शार्ङ्गदेव जैसी विभूतियों के प्रति अश्रद्धा का निर्माण किया। ये लोग श्रुति-सिद्धान्त को समझने-समझाने में असमर्थ रहे, जिन लोगों ने मूर्च्छना-पद्धति को समझने का प्रयत्न किया, मेलवादियों द्वारा उन्हें 'श्रुतिपण्डित' कहकर उनका उपहास किया गया।

ये मेलवादी आधुनिक ग्रन्थकार अच्छे कलाकारों का निर्माण न कर सके, अतः अक्षर-शत्रु परन्तु आनुवंशिक कलाकार ये दावा करने लगे कि संगीत का वास्तविक तत्त्व निरक्षर संगीतजीवियों के पास है। उत्तर भारतीय ठाठवादियों और 'खाँ साहबों' के पारस्परिक कलह का लाभ उठाकर दक्षिण भारत के कुछ प्रचारपटु सज्जनों ने अमेरिका जैसे देशों में जाकर यह घोषित कर दिया कि कर्नाटक-संगीत ही अनादि भारतीय संगीत है, यह विदेशी प्रभाव से सर्वथा शून्य है और उत्तर भारतीय संगीत में मुसलमानों के सम्पर्क से विकार आ गया है। इतिहास से सर्वथा अनभिज्ञ परन्तु विदेश-प्रिय कुछ भारतीय सितारवादकों ने भी पूर्वोक्त मत की पुष्टि करते हुए कर्नाटक संगीत को विशुद्ध भारतीय और उत्तर भारतीय संगीत को विकृत कहना आरम्भ कर दिया।

इस प्रचार का परिणाम यह हुआ कि वास्तविक इतिहास से अनभिज्ञ विदेशी भी ऐसे भ्रामक वक्तव्यों पर विश्वास कर बैठे। दक्षिण भारत के गायकों और गायिकाओं के लिए विदेशों के द्वार खुल गये। इस प्रचार का कारण विशुद्ध आर्थिक था।

भारतीय इतिहास के वास्तविक अध्ययन से शून्य किसी भारतीय ने खुसरो को ईरान से आया हुआ बताया, तो किसी ने कह दिया कि भारत में स्वर-लिपि थी ही नहीं, उसके प्रवर्तक भातखण्डेजी हैं। आज भी अनधिकारी वक्ताओं के द्वारा

1. वही, पृ. 99-106
2. वही, पृ. 31-38
3. वही, पृ. 39-54

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विदेशों में मनमाने वक्तव्य दिये जा रहे हैं।

ऐसी मान्यताओं का निराकरण करने और वास्तविकता को स्पष्ट करने के लिए एक पुस्तक की आवश्यकता थी, प्रस्तुत पुस्तक इसी दिशा में एक प्रारम्भिक प्रयत्न है।

प्रत्येक इतिहास-लेखक का एक विशिष्ट दृष्टिकोण होता है। उस दृष्टिकोण के अनुसार ही वह इतिहास के मूल ग्रन्थों का अध्ययन करके सामग्री चुनता है। संगीत का इतिहास लिखनेवाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए इतिहास-ग्रन्थों में संगीत-सम्बन्धी प्रत्येक उद्धरण उपयोगी है, परन्तु वह उद्धरण उस व्यक्ति के लिए सर्वथा अनावश्यक है, जो राज्याभिषेकों, युद्धों, विजयों-पराजयों अथवा वंशावलियों का वर्णन करना चाहता है।

प्रसिद्ध इतिहासकार स्मिथ ने केवल किंवदन्तियों के आधार पर यह लिख दिया कि तानसेन मुसलमान हो गया था और उसकी समाधि ग्वालियर में है। स्मिथ की यह उक्ति भावी इतिहासकारों के लिए वेदवाक्य बन गयी, परन्तु संगीत के इतिहास का लेखक यह सोचेगा कि तानसेन यदि मुसलमान हो गये थे, तो उनका कोई मुस्लिम नाम क्यों नहीं है? तानसेन के मुसलमान होने की चर्चा अकबर, जहाँगीर अथवा शाहजहाँ के युग के किसी इतिहासकार ने क्यों नहीं की? तानसेन के द्वारा इस्लाम अङ्गीकृत किये जाने की बात अठारहवीं शती ई. से पूर्व किसी ने क्यों नहीं कही? यदि तानसेन का जन्म संगीत के विरोधी शेख़ मुहम्मद ग़ौस के आशीर्वाद से हुआ था, तो वे शेख़ सलीम चिश्ती के भक्त क्यों हो गये? यदि तानसेन की क़ब्र ग्वालियर में है, तो उनके वंशजों की क़ब्रें वहाँ क्यों नहीं हैं?

इतिहास का सामान्य लेखक निस्संकोच यह लिख देता है कि औरंगज़ेब संगीत का विरोधी था और उसने अपने दरबार में गाना-बजाना निषिद्ध कर दिया था। संगीत के इतिहास का लेखक यह देखेगा कि औरंगज़ेब ने दरबार में जब संगीत को निषिद्ध किया, तब उसकी आयु पचास वर्ष थी। उनचास वर्ष की आयु तक वह संगीत सुनता रहा, संगीतज्ञों को पुरस्कार और उपाधियाँ देता रहा, उसे समर्पित करने के लिए संगीत-ग्रन्थों की रचना होती रही। दरबार में गाने-बजाने का निषेध औरंगज़ेब ने सुन्नी मौलवियों और बहुसंख्यक सुन्नी मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए समय की आवश्यकता को देखते हुए केवल राजनीतिक दृष्टि से किया था। उसके अन्तःपुर में गाना-बजाना सदैव हुआ और अन्तःपुर के लिए गायिकाओं की नियुक्ति वह स्वयं करता रहा।[1]

ये दो उदाहरण इस तथ्य के लिए प्रबल प्रमाण हैं कि संगीत का इतिहास लिखने के लिए यह अनिवार्य है कि इसिहास के मूल ग्रन्थों का अध्ययन संगीत की दृष्टि से किया जाये।

प्रस्तुत पुस्तक में यह प्रयत्न किया गया है, परन्तु विभिन्न देशी राज्यों के

1. वही, पृ. 77-78

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'गुनीजनखानों' तथा विभिन्न सूफ़ी खानकाहों के रजिस्टरों और सूफ़ियों के इतिवृत्तों में संगीत-विषयक इतिहास छिपा पड़ा है, जिनका अध्ययन परमावश्यक है।

यह सत्य है कि मेल-सिद्धान्त ने भारतीय संगीतशास्त्र को प्रभावित किया, परन्तु यह भी सत्य है कि पन्द्रहवीं शताब्दी ईसवी में बहादुर मलिक जैसे मुसलमान मूर्च्छना-पद्धति के ग्रन्थों को समझना चाहते थे।[1] अकबर के दरबार में संगीत-रत्नाकर पर विचार होता था।[2] स्वरों के मूर्च्छनानुसारी नाम 'गुप्त' और मेलानुसारी नाम 'प्रकट' कहलाते थे।[3]

विद्वान् लेखक ने सिद्ध किया है कि भारतीय ब्राह्मणों ने मूर्तिभञ्जकों को वेदाश्रित एवं पापहारिणी ग्राम-मूर्च्छना पद्धति का ज्ञान देना न चाहा।[4] विकार-भय से उन्होंने मनोविनोद के लिए ग्रामरागों का प्रयोग सार्वजनिक रूप में वर्जित कर दिया।[5] ग्राम-मूर्च्छना-सिद्धान्त को समझने के लिए न तो खुसरो का आग्रह था और न समझाने के लिए गोपाल नायक के मन में उत्साह।[6]

भले ही खुसरो राग-वर्गीकरण की भारतीय पद्धति से परिचित न हों, तथापि उन्होंने भारतीय संगीत को विश्व-भर में सर्वश्रेष्ठ कहा है।[7]

'देशी' संगीत लोकरुचि का परिणाम होता है, लोक की बदलती हुई रुचि संगीत में परिवर्तन सदैव लाती रही है। यदि भारत में मुसलमान न भी आये होते, तो भी नैसर्गिक परिवर्तनशीलता ने भारतीय संगीत को प्रभावित किया होता, अतः यह सोचना ठीक नहीं होगा कि मुसलमानों द्वारा प्रवर्तित राग-वर्गीकरण की पद्धति से भारतीय स्वरशास्त्र की आत्मा सर्वथा बदल गयी, इतना अवश्य है कि मुसलमानों के योग से रागों के संकर का एक अभारतीय प्रकार भी भारत में प्रचलित हो गया, नये राग भी आये, हाँ भारतीय रसशास्त्र से नवीन वर्गीकरण का कोई सम्बन्ध न रहा। परिणाम यह हुआ कि संयोग, वियोग, वैराग्य, भक्ति और वीरता इत्यादि के गीत प्रत्येक राग में गाये जाने लगे। कल्लिनाथ ने मुस्लिम प्रभाव से हुए परिवर्तनों की ओर संकेत किया है।[8]

दक्षिण भारत के साथ अरबों के व्यापारिक सम्बन्ध, पश्चिमोत्तर प्रदेश से आये मुस्लिम आक्रान्ताओं और उनके उत्तराधिकारियों के साथ सूफ़ियों के सम्बन्ध और प्रयोजन, बादशाहों और सूफ़ियों के पारस्परिक सम्बन्धों के राजनीतिक और

1. भरत का संगीत-सिद्धान्त, पृ. 313
2. वही, पृ. 75
3. संगीत-चिन्तामणि, पृ. 367-387
4. वही, पृ. 31
5. वही, पृ. 32
6. वही, पृ. 33
7. वही
8. वहीं, पृ. 37

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धार्मिक परिणामों को प्रस्तुत पुस्तिका में सप्रमाण सिद्ध किया गया है।

अलाउद्दीन खिलजी के युग में व्रज, अवध, गुजरात, दक्षिण तथा विदेश के गुणी दिल्ली में एकत्र हुए, उनमें परस्पर विचार-विनिमय होता रहा, इनका प्रभाव अन्तःपुर तक हुआ और फलतः इन्द्रप्रस्थ-मत का जन्म हुआ, निजामुद्दीन चिश्ती और उनकी परम्परा के परवर्ती सूफ़ियों के भक्त बहमनी सुलतान इन्द्रप्रस्थ-मत को गुलबर्गा ले गये और उन्होंने विजयनगर को इन्द्रप्रस्थ-मत से प्रभावित किया, फलतः दक्षिण में भी इन्द्रप्रस्थ-मत से प्रभावित मेल-पद्धति के ग्रन्थों की रचना हुई, मेलवादी दाक्षिणात्य आचार्य ग्राम-मूर्च्छना-पद्धति को समझने में सर्वथा असमर्थ रहे, ये सभी तथ्य विद्वान् लेखक ने सप्रमाण प्रतिपादित किये हैं।

विजयनगर-साम्राज्य के विघटन से उत्पन्न तंजोर जैसी स्वतन्त्र इकाइयों के आश्रय में लिखित ग्रन्थों पर समुद्र के पार से आयी हुई विदेशी जातियों के प्रभाव की ओर प्रस्तुत पुस्तिका में इङ्गित किया गया है और सिद्ध किया गया है कि वेंकटमखी के परम गुरु तानप्पा ने एक नवीन सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया था।

लोचन, अहोबल, रामामात्य, पुण्डरीक, श्रीकण्ठ, सोमनाथ और वेंकटमखी पर लिखी गयी टिप्पणियाँ अनेक दृष्टियों से अपूर्व हैं। इनके दृष्टिकोण के अन्तर को स्पष्ट करने के लिए अन्त में सारणी दी गयी है। मुक़ामों और मूर्च्छनाओं को स्पष्ट करने के लिए अन्त में कई और उपयोगी सारणियाँ दी गयी हैं।

ग्राम-सिद्धि, स्वरों और श्रुतियों के परिमाण, सभी मूर्च्छनाओं के स्वरों की आधुनिक संज्ञाएँ और वर्तमान पद्धति से प्राचीन मूर्च्छनाओं का स्पष्टीकरण, भारतीय रागों के वर्गीकरण का मुस्लिम आधार, हिन्दुस्तानी ठाठों के विभिन्न नाम इत्यादि विषय पुस्तक के अन्त में दिये गये हैं।

विभिन्न नरेशों और उनके आश्रित कलाकारों के विषय में जो कुछ भी लिखा गया है, उसके समसामयिक आधार का उल्लेख सर्वत्र है।

लेखक का ध्यान सर्वत्र संक्षेप की ओर रहा है। कम-से-कम शब्दों में अधिक-से-अधिक बात कहने की प्रवृत्ति सर्वत्र है। केवल पच्चीस पंक्तियों में तानसेन के विषय में जो ऐतिहासिक तथ्य प्रतिपादित किये गये हैं, वे अपना उदाहरण स्वयं हैं।[1]

लेखक की चार पीढ़ियाँ रामपुर-दरबार में रहीं, जो संगीत और साहित्य का रंगस्थल था। वे बत्तीस वर्ष की आयु तक रामपुर में रहे, अतः उनके मित्र वर्ग में सुन्नी, शिया, मौलवी, क़ाज़ी, गायक, वादक और नर्तक सभी रहे, कुरआन भी उनके अध्ययन का प्रिय विषय रहा, साहित्य, काव्य, दर्शन और संगीत उनके आनुवंशिक व्यसन रहे, 'भरत का संगीत-सिद्धान्त' ग्राम-मूर्च्छना-पद्धति के विषय में उनके अगाध पाण्डित्य का प्रत्यक्ष प्रमाण है और प्रस्तुत पुस्तक उनके ऐतिहासिक ज्ञान का परिचय देने के लिए पर्याप्त है। उन्होंने सैकड़ों बन्दिशों की रचना की है।

1. संगीत चिन्तामणि, पृ. 102-103

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रस्तुत विषय पर लिखने के लिए उनमें लगन होना स्वाभाविक है, क्योंकि अपने प्रिय विषय पर पड़े हुए मिथ्या के आवरण को हटाकर सत्य का दिग्दर्शन करने के लिए उनका आकुल होना स्वाभाविक है।

लेखक ने विषय-प्रवेश के आरम्भ में ही यह स्पष्ट किया है कि आलोचक को नीतिज्ञ नहीं 'तत्त्वज्ञ' होना चाहिए। आलोचक शत्रु के गुण भी प्रशंसापूर्वक घोषित करता है और गुरु के दोषों को भी स्वीकृत करने में नहीं हिचकिचाता। आलोचना का प्रयोजन व्यवस्था बनाये रखना है, वह व्यक्तिगत रागद्वेष से प्रेरित नहीं होती।

कुछ लोग बीसवीं शती के कुछ प्रचारकों को 'अवतार', 'पैग़म्बर' या 'पीर' बनाकर पुजवाना चाहते हैं, परन्तु उनके विचार-पक्ष में कुछ संवर्द्धन स्वयं नहीं करते, उन्हें इस पुस्तक में बहुमूल्य सामग्री मिलेगी और उन्हें गम्भीरता से सोचना होगा कि जिन अनेक मिथ्या धारणाओं से उन्हें अकारण मोह है, उनमें परिवर्तन आवश्यक है।

जो लोग संगीत के विद्यार्थियों के लिए 'अमृतधारा' जैसी पुस्तकें लिखने और बेचने के अभ्यस्त हैं, उन्हें भी इस पुस्तक से लाभ होगा और वे अपने स्वभाव के अनुसार प्रस्तुत पुस्तक से चुपचाप सामग्री लेकर अपनी परीक्षोपयोगिनी पुस्तकों में उचित संशोधन कर सकेंगे।

संगीत के उन अध्यापकों को भी इस पुस्तक से थोड़ा-बहुत लाभ होगा, जिन्हें शिकायत है कि पढ़ाने के लिए तैयार 'मैटर' नहीं मिलता।

पुस्तक में विषय-विभाजन इस प्रकार किया गया है कि विद्यार्थियों को अपने लिए टिप्पणियाँ तैयार करने में सुविधा हो।

विभिन्न कलाकारों पर विस्तृत जीवनियाँ पृथक् लिखी जा रही हैं जो सप्रमाण हैं। पुस्तक का आकार बढ़ जाने की आशंका से उन्हें पृथक् प्रकाशित किया जा रहा है।

भूमिका-लेखक यदि लेखक से निकट रूप में परिचित हो, तो वह लेखक के आदेश की उपेक्षा नहीं कर सकता। इन पंक्तियों की लेखिका को विद्वान् लेखक की सहधर्मिणी और शिष्या होने का सौभाग्य प्राप्त है, अतः उसने प्रस्तुत भूमिका लिखकर अपने पूज्य पति और गुरु के आदेश का पालन-मात्र किया है।

प्रस्तुत पंक्तियों की लेखिका स्वयं संगीत की अध्यापिका और गायिका है, प्रस्तुत पुस्तक उसके मन में उठे हुए अनेक प्रश्नों के समाधान की चेष्टा है। किसी भी पुस्तक के लिखे जाने और उसे प्रेस भेजने के लिए तैयार करने में अवैतनिक और स्थायी असिस्टेंन्ट का, तुनुकमिज़ाज पति की पत्नी का, आज्ञाकारिणी शिष्या का और घर सँभालनेवाली गृहिणी का जितना योग हो सकता है, वह अकेली, इन पंक्तियों की लेखिका का है। इस दायित्व के भार को भुक्तभोगी ही समझ सकते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक हम दोनों की ओर से संगीत-जगत् को समर्पित है।

सुलोचना बृहस्पति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषयानुक्रमणिका

विषय-प्रवेश	17
मुस्लिम शासन और सूफ़ी	26
इन्द्रप्रस्थ-मत का जन्म और उसके कारण	36
मुक़ाम-पद्धति के संगीत-ग्रन्थ	43
मुस्लिम नरेश और संगीत	57
बहमनी सुलतान और संगीत	65
मुग़ल सम्राट् और संगीत	70
वाजिदअली शाह के युग का संगीत	80
रुहेले मुस्लिम नरेश और संगीत	92
ब्रजभाषा-ध्रुवपद का जन्म, उसकी पृष्ठभूमि और परिणाम	96
सूफी और हिन्दी	103
दक्षिण भारत के कुछ और मुसलमान हिन्दी कवि	111
मूर्च्छना और मेल	116
सहायक ग्रन्थ सूची	135
नामानुक्रमणिका	138

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषय-प्रवेश

आलोचना और उसकी आवश्यकता

संस्कृत की एक उक्ति है—'वाराङ्गनेव नृपनीतिरनेकरूपा'—अर्थात् 'राजनीति वाराङ्गना है, जिसके अनेक रूप हैं।' राजनीति का प्रवेश दुर्भाग्यवश जब कला के क्षेत्र में हो जाता है, तब सत्य का मुख सोने के पात्र से ढक जाता है। राजनीति-रूपी वाराङ्गना रूठकर, मनकर, मुस्कराकर, भौंहें तरेरकर अनेक विश्वामित्रों का तपोभङ्ग करा देती है और वे उसके ताल पर, संकेतों पर, नाचकर सत्य का अनुभव करके भी उसका प्रतिपादन नहीं कर पाते। 'न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्' अर्थात् —'अप्रिय सत्य नहीं कहना चाहिए' जैसी उक्तियाँ नीतिज्ञों की हैं, तत्त्वज्ञों की नहीं। सत्य का उपासक कहता है—'शत्रोरपिगुणा वाच्या दोषा वाच्या गुरोरपि।' —अर्थात् 'शत्रुओं के भी गुण प्रशंसनीय हैं और गुरुओं के भी दोष कथनीय हैं।'

कालिदास 'कविकुलगुरु' कहलाते हैं, ठीक है, परन्तु जहाँ उन्होंने काव्य की मर्यादा का उल्लंघन किया है, वहाँ मम्मट उनके दोषों की ओर संकेत करने से नहीं चूके। यदि मम्मट ऐसा न करते, तो अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती। अतः स्वस्थ आलोचना वह आवश्यक अंकुश है, जो व्यवस्था बनाये रखती है।

भारतीय विद्वान् इसी सदुद्देश्य से प्रेरित होकर खण्डन-मण्डन में प्रवृत्त रहे हैं, व्यक्तिगत राग-द्वेष उनकी इस प्रवृत्ति में कारण नहीं है।

संगीत के क्षेत्र में भी अनेक अनर्गल बातें कही गयी हैं, कही जा रही हैं। उनमें से एक अत्यन्त अनर्गल बात यह है कि उत्तर भारतीय संगीत मुसलमानों के प्रभाव से दूषित, भ्रष्ट या मुस्लिम प्रभाव-प्रधान हो गया है और दक्षिण भारत के संगीत पर कोई विदेशी प्रभाव नहीं है। खेदजनक स्थिति यह है कि ऐसे व्यक्तियों की दृष्टि में अलाउद्दीन खिलजी का काल बारहवीं (!) शताब्दी ईस्वी है और अमीर खुसरो विदेश से भारत में आये थे।

अलाउद्दीन ख़िलजी का राज्यकाल 1296-1316 ई. है, अमीर खुसरो एटा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज़िले के पटियाली गाँव में 1255 ई. में पैदा हुए और 1325 ई. में दिल्ली में मरे। इस प्रत्यक्ष सत्य की उपेक्षा करके उन्हें विदेशी कह डालना दुस्साहस है।

पूर्वोक्त विचित्र वक्तव्य जिन सज्जन की लेखनी से निकला है, वे आज भारतीय संगीत के भाग्य-विधाता माने जाते हैं। इनके इस वक्तव्य का प्रकाशन बड़ी सजधज के साथ विदेश में हुआ है और फलत: प्राचीन भारतीय संगीत की खोज करनेवाले विद्यार्थी एक महादेश से सीधे दक्षिण भारत पहुँच रहे हैं।

ऐसी शोचनीय अवस्था में सत्य का प्रतिपादन करने के लिए अत्यन्त साहस की आवश्यकता है।

इस युग में जिन विचारकों ने उत्तर भारतीय संगीत के विषय में महत्त्वपूर्ण कार्य किया, उन पर दक्षिण के ग्रन्थों का अकारण आतंक रहा। इन आतंकित व्यक्तियों को यह शिकायत थी कि जिस युग में दक्षिण के ग्रन्थकारों ने अपने रागों को वैज्ञानिक रूप से वर्गीकृत किया, उस युग में उत्तर भारत में संस्कृत भाषा के माध्यम से प्रौढ़ ग्रन्थ क्यों नहीं लिखे गये। पुण्डरीक ने दक्षिण से आगरा आकर ग्रन्थ लिखे। इन आतंकित लोगों ने इतना नहीं सोचा कि केवल संस्कृत में लिखे जाने से कोई वस्तु न तो प्राचीन हो जाती है, न पवित्र। देखना यह चाहिए कि जो कुछ लिखा गया है, वह परिस्थिति या काल से कितना प्रभावित है।

वास्तविक शोधकार्य अत्यन्त कठिन है। अनेक प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए जो प्रतिक्षण आकुल हो, अनेक निर्मूल किंवदन्तियों एवं अनुश्रुतियों का शवच्छेद करने के लिए जिसमें पर्याप्त साहस और विवेक हो, वही वास्तविक शोधकार्य और उसका मूल्यांकन कर सकता है।

सैकड़ों पृष्ठ पढ़ने के पश्चात् कहीं कोई काम की बात मिलती है। कभी-कभी किसी वस्तु को ढूँढ़ने के प्रयत्न में कोई और ही उपयोगी वस्तु मिल जाती है और कभी-कभी भगीरथ प्रयत्न करने पर भी वह तथ्य नहीं मिल पाता, जिसे खोजने के लिए व्यक्ति की बड़ी इच्छा होती है। जिन्होंने वास्तविक अनुसन्धान का कार्य किया है, वही इस मार्ग की कठिनताओं और विषमताओं से परिचित होते हैं।

कभी-कभी ऐसे अखण्डनीय और पुष्ट प्रमाण मिलते हैं, जब अनेक पूर्व मान्यताएँ धराशायिनी हो जाती हैं और उन मान्यताओं के खण्डन से स्वयं को भी मर्मान्तिक वेदना होती है, परन्तु अनुसन्धानकर्ता की ईमानदारी उसे सच बात कहने के लिए विवश करती है।

अरब और भारत के सम्बन्ध

अरबों का सम्बन्ध भारतवर्ष के साथ सहस्रों वर्ष पूर्व का है। इसका कारण समुद्र के मार्ग से होनेवाला व्यापार है। अरब व्यापारी दूर-दूर देशों तक व्यापार करते थे और इसीलिए वे भारतीय समुद्री तटों से भलीभाँति परिचित थे। अरब व्यापारी जलमार्ग से कराची पहुँचते और समुद्र के किनारे-किनारे काठियावाड़, थाना, खम्भात, कालीकट, कन्याकुमारी, मद्रास का चक्कर लगाते हुए बर्मा और स्याम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होकर चीन चले जाते थे। ये अरव यात्री भारत की उपज को मिस्र और सीरिया के रास्ते योरोप तक पहुँचाते थे।

इस्लाम के उदय के पश्चात् इन अरव मुसलमानों की बस्तियाँ भी भारतीय समुद्री तटों के नगरों में बस गयी थीं। ये अरब मुसलमान खैबर की घाटी से भारत में घुसनेवाले तुर्क मुसलमानों की अपेक्षा शिष्ट, सभ्य और सुसंस्कृत थे। ये लोग व्यापार के लिए आये थे, न तो भारत-विजय उनका लक्ष्य था और न धर्म-प्रचार।

636-637 ई. में अरवों ने भारत के समुद्रवर्ती तट-प्रदेश को लूटने के लिए आक्रमण किये, परन्तु ये आक्रमण अरवों को महँगे पड़े और इन आक्रमणों को न दुहराने का निश्चय किया गया।

712 ई. में सिन्ध पर मुसलमानों का आक्रमण हुआ। युद्ध-काल में हत्या और विध्वंस के पश्चात् मुहम्मद-बिन क़ासिम ने ब्राह्मणों को ऊँचे पदों पर नियुक्त किया और शासनकार्य उन्हें सौंप दिया। अरव सैनिक भारत में बस गये, उन्होंने भारतीय नारियों से विवाह किया और सुखपूर्वक रहने लगे। मनसूरा, कुजदार, कदावेल, वैजा, महफ़ूज़ा और मुलतान जैसी मुसलमान बस्तियाँ विद्या और संस्कृति का केन्द्र बन गयीं।

धीरे-धीरे मुसलमानों में खारिजी, जिन्दिक, ख्वाजा, शरिया, मुलाहिद और करमतिया इत्यादि सम्प्रदाय धार्मिक उन्नति करते गये और अपने-अपने मत के प्रचार में लगे रहे, अरवों में एकता न रही।

871 ई. में सिन्ध खलीफ़ाओं के शासन से सर्वथा मुक्त हो गया। स्थानीय अरब वंशों ने अपने पृथक्-पृथक् शासन स्थापित कर लिये।

हिन्दू गायकों, शिल्पियों, दार्शनिकों और विद्वानों ने अरबों को अत्यन्त प्रभावित किया। दर्शन, ज्योतिष, गणित, आयुर्वेद, रसायन आदि की शिक्षा अरबों को ब्राह्मण विद्वानों और बौद्ध भिक्षुओं से मिली। बग़दाद के शासकों ने भारतीय विद्याओं के अध्ययन के लिए अरबों को प्रोत्साहित किया। 753-774 ई. के मध्य में अरब लोग 'ब्रह्म-सिद्धान्त' और 'खण्ड-खाद्यक' जैसे ग्रन्थ अरब ले गये। इन ग्रन्थों का अरवी अनुवाद हुआ, जिससे अरबों को ज्योतिष-विज्ञान के प्रारम्भिक सिद्धान्तों का ज्ञान हुआ। मुसलमानों की 'बरमक' शाखा ने अनेक अरबों को विद्याध्ययन के लिए भारत भेजा, भारतीय विद्वानों को बग़दाद बुलाया और दर्शन, आयुर्वेद, ज्योतिष इत्यादि विषयों के ग्रन्थों का अरबी में अनुवाद कराया। भारत से उपलब्ध ज्ञानको भलीभाँति पचाकर अरबों ने योरोप के समक्ष इस प्रकार रखा, जो उसके लिए सुगम हो गया।

अब्बासिया वंश की समाप्ति 1258 ई. में हलाकू (मृ. 1265 ई.) ने की। बग़दाद और भारत का सांस्कृतिक सम्बन्ध विच्छिन्न हो गया। अरब विद्वान् यूनानी कला, साहित्य, दर्शन और विज्ञान का अध्ययन करने लगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुस्लिम आक्रान्ता और सूफ़ी

यह तो रही अरब और भारत के सांस्कृतिक सम्बन्धों की बात।

ग़ज़नवी बादशाहों में सुबुक्तगीन ने 986-987 ई. में भारत पर प्रथम और 997 ई. में दूसरा आक्रमण किया। भारत के कुछ प्रदेश मुसलमानों के हाथ में आ गये। सुबुक्तगीन इसी वर्ष मर गया।

उसके पुत्र महमूद ग़ज़नवी ने 1000 ई. से 1026 ई. तक भारत पर सत्रह बार आक्रमण किया। वह लुटेरा था, लूटपाट करके अगाध सम्पत्ति ले गया। इसके कारण हिन्दू विद्वान् उन भारतीय प्रदेशों में चले गये, जहाँ तक मुसलमानों की पहुँच नहीं थी। अलबेरूनी ने इस युग के भारत का चित्र खींचा है।

भारत पर शासन करने के विचार से आक्रमण करनेवाला प्रथम मुसलमान मुहम्मद ग़ोरी था। उसने पृथ्वीराज को पराजित करके भारत में मुस्लिम शासन की आधारशिला रखी। मुसलमानों द्वारा शासित भारतीय प्रदेशों पर मुहम्मद ग़ोरी ने पहले ही अधिकार कर लिया और 'करमतिया' सम्प्रदाय के मुसलमानों से मुलतान छीन लिया।

मुहम्मद ग़ोरी की सेनाओं के साथ मुईनुद्दीन चिश्ती पृथ्वीराज की पराजय से छः वर्ष पूर्व आकर अजमेर में बस चुके थे। उनकी मृत्यु (1235 ई.) के समय मुलतान के प्रसिद्ध विद्वान, सूफ़ी और संगीतज्ञ शेख बहाउद्दीन ज़करिया की आयु 53 वर्ष थी, अर्थात् वे भी मुहम्मद ग़ोरी के राज्य-काल में युवा और शम्सुद्दीन इल्तुतमिश के राज्यकाल में प्रौढ़ हुए थे।

शेख मुईनुद्दीन चिश्ती और उनके अनुयायियों ने भारतीय भाषा और लोकाचार को अपनाया, निज़ामुद्दीन चिश्ती के युग से तो उनकी परम्परा में वसन्त भी मनाया जाने लगा और रंग भी इस परम्परा में आ गया। मुसलमानों के घरों में भारतीय नारियों के प्रवेश से मिश्रित रक्त के मुसलमानों में अनेक हिन्दू रीतियाँ भी घुस गयीं। भारतीय गायिकाओं और नर्तकियों को दासी बनाये जाने के कारण भारतीय संगीत मुसलमानों के घरों में गया।

मौलवी लोग संगीत को त्याज्य मानते थे, चिश्ती परम्परा के सूफ़ी लोग भक्तिपरक संगीत आवश्यक मानते थे, सूफ़ियों की सुहरवर्दी परम्परा के संस्थापक शेख बहाउद्दीन ज़करिया संगीत के मर्मज्ञ विद्वान् थे और मुस्लिम बादशाहों की दृष्टि में संगीत मनोरंजन का साधन था।

कैकुबाद (रा. का. 1287-1290 ई.) के दरबार में ऐसे गायक थे, जो फ़ारसी गीतों के साथ ही हिन्दी गाने भी गाते थे। खिलजी और तुग़लक नरेशों के युग में अनेक क़व्वाल फ़ारसी ग़ज़लों के साथ हिन्दी गाने भी खूब गाते थे और खिलजियों के युग में ही अमीर खुसरो ने भारतीय रागों का वर्गीकरण अभारतीय दृष्टिकोण से किया।

निज़ामुद्दीन चिश्ती की परम्परा के प्रचारक भारतवर्ष-भर में फैल गये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बहमनी साम्राज्य की स्थापना से साथ ही साथ उनके पैर दक्षिण में जम गये, गुजरात, बंगाल, बिहार इत्यादि प्रदेशों में इस परम्परा के सूफ़ी और क़व्वाल गये, गंगा-यमुना का दुआब तो भली भाँति प्रभावित था ही।

चिश्ती-परम्परा के सम्पर्क से बहमनी सुलतान मुहम्मदशाह प्रथम और फ़ीरोज़शाह जैसे सुलतान संगीत के परम संरक्षक रहे। बहमनी साम्राज्य के विघटन के पश्चात् मुहम्मद कुली कुतुबशाह और इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय जैसे लोग संगीत-निष्णात और साधक हुए।

शम्सुद्दीन इल्तुतमिश, कैकुबाद, जलालुद्दीन ख़िलजी, अलाउद्दीन ख़िलजी, कुतुबुद्दीन ख़िलजी, मुहम्मद तुग़लक, फ़ीरोज़ तुग़लक, सिकन्दर लोदी इत्यादि बादशाहों के दरबार में संगीत की भरपूर चर्चा रही। सिकन्दर लोदी के युग में तो ब्राह्मण लोग भी मुस्लिम संगीतशास्त्र की शिक्षा लेने लगे थे।

इसी युग में कुछ मुसलमानों ने भारतीय संगीतशास्त्र को समझने की भी चेष्टा की। इब्राहीम शर्की के द्वारा नियुक्त कड़ा के सूबेदार मलिक सुलतान के पुत्र बहादुर मलिक ने संगीतशास्त्र के उपलब्ध ग्रन्थ एकत्र किये, देश-भर के पण्डितों को बुलाकर उपलब्ध ग्रन्थों के आधार पर 'संगीत-शिरोमणि' नामक ग्रन्थ की रचना करायी, परन्तु बहादुर मलिक बेचारा सम्राट् न होकर साधारण व्यक्ति था। उसके प्रयत्न का कोई विशेष परिणाम न हुआ।

इसी युग में हुसेनशाह शर्की ख़ुसरो-पद्धति का धुरन्धर पण्डित और अनेक नये रागों का आविष्कारक हुआ। इसी को भारतीय संगीत में 'ख़याल' का प्रवर्तक कहा जाता है, परन्तु 'ख़याल' शीर्षक से गेय काव्य हमें दक्षिण के सूफ़ियों में मिलता है।

हिन्दी और संगीत

इस युग तक दक्षिण में हिन्दी राजदरबारों में प्रतिष्ठित हो चुकी थी। इस तथ्य से प्रेरणा लेकर मानसिंह तोमर ने ब्रजभाषा ध्रुवपद का प्रवर्तन किया और विष्णुपदों का भी।

मानसिंह तोमर के प्रयत्नों से बहादुरशाह गुजराती तक का दरबार प्रभावित हुआ। बैजू ने हुमायूँ को भी सन्तुष्ट किया।

राग-रागिनी-वर्गीकरण को मानसिंह तोमर के प्रयत्नों से प्रमुखता मिली। अकबरी दरबार में ग्वालियरी कलावन्त छा गये, विदेशी मुसलमान कलाकारों के निकट सम्पर्क में आने का अवसर उन्हें मिला और अकबरी दरबार के कलाकारों ने नये-नये रागों की सृष्टि की।

मुग़ल हरम में हिन्दू राजकुमारियों के प्रवेश से अकबरी दरबार के ध्रुवपदों में गणेश और सरस्वती जैसे देवी-देवताओं के नामों को प्रवेश मिला। नौरोज़ के साथ होली और दिवाली के उत्सवों की भी धूमधाम रही।

ध्रुवपदों में नायिका-भेद उभरकर आया, अन्तःपुर में 'कामसूत्र' का प्रवेश भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो गया। मुग़ल सम्राट् 'संगीत-रत्नाकर' पर भी गुणियों के साथ विचार-विनिमय करने लगे।

अकबरी दरबारमें 'रागसागर' की रचना हुई, जिसमें राग-रागिनियों के ध्यान भी थे और 'मेल' भी। यह प्रवृत्ति हम जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगज़ेब इत्यादि के युग में भी पाते हैं।

मुहम्मदशाह रंगीले के युग तक हम सितार और तबले की चर्चा नहीं पाते। सदारंग के अनुज और अदारंग के पिता ख़ुसरो ख़ाँ ने सितार का आविष्कार किया।

मुहम्मदशाह रंगीले की मृत्यु (1748 ई.) से उनचास वर्ष पश्चात् संगृहीत ग्रन्थ 'नादिरातिशाही' पृ. 87 पर हमें 'सितार' की चर्चा मिलती है। 'नादिराति-शाही' मुग़ल सम्राट् शाहआलम द्वितीय की कृति है, जिसकी प्रथम पाण्डुलिपि 1797 ई. में शाहआलम ने स्वयं तैयार करायी थी। तबले की चर्चा उसमें भी नहीं है। यह ग्रन्थ रामपुर की रज़ा-लायब्रेरी से 1944 ई. में प्रकाशित हुआ है, जो अनेक दृष्टियों से पठनीय है। उस समय तक कवित्त और सवैये गेय छन्द थे और मुग़ल दरबारों में गाये जाते थे।

मुक़ाम पद्धति के संगीत-ग्रन्थ

बाबर के आक्रमण से तेईस वर्ष पश्चात् रामामात्य ने 'स्वरमेल-कलानिधि' की रचना की। पुण्डरीक और श्रीकण्ठ के ग्रन्थ अकबर के युग में लिखे गये। जहाँगीर के शासनकाल में सोमनाथ ने 'रागविबोध' लिखा। गोविन्द दीक्षित की रचना का काल शाहजहाँ का युग है और वेंकटमखी का ग्रन्थ 'चतुर्दण्डी प्रकाशिका' औरंगज़ेब के युग में लिखा गया।

लोचन इस युग से पूर्व 'राग-तरंगिणी' की रचना कर चुके थे।

इन सभी संस्कृत-ग्रन्थों के राग-वर्गीकरण का आधार मेल-पद्धति है। बीसवीं शती के लोग इन दाक्षिणात्य पण्डितों के ग्रन्थों से आतंकित रहे हैं, क्योंकि ये ग्रन्थ संस्कृत भाषा में लिखे गये हैं।

रागों के ध्यान आगम-पुराण-परम्परा का प्रभाव हैं। 'जगदेकमल्ल' (रा. का. 1134-1145 ई.) ने समस्त रागों की जननी 'षाड्जी' जाति का 'ध्यान' दिया है। शृंगारशेखर (1330 ई.) ने रागों और उनकी पत्नियों की चर्चा की है। ये दोनों दाक्षिणात्य आचार्य हैं।

बादशाह, सूफ़ी, संगीत और लोक

यह भलीभाँति विख्यात है कि वैदिक काल में वीणा के साथ गान करनेवाले ब्राह्मण गाते थे।[1] उनका गान यज्ञों का अंग था, परन्तु प्रमत्तों और गायकों से दान तक लेना निषिद्ध समझा जाता था और कहा जाता था कि इन लोगों से दान लेना साक्षात् पाप ग्रहण करना है।[2]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसका अर्थ यह है कि 'धर्म' के लिए गाना अच्छी बात है और कला-विक्रय अच्छी बात नहीं।

वेदव्यास महर्षि कहते हैं—"चक्रपाणि भगवान् विष्णु के विभिन्न अवतारों और उनके अलौकिक कर्मों को सुन-सुनकर वैसे ही अर्थों का बोध करानेवाले नामों का गान निस्संकोच होकर करना और निर्लिप्त होकर भ्रमण करना चाहिए।"[3]

नारद इस चारित्र्य के अनुपम उदाहरण हैं। भगवन्नाम का स्मरण और संकीर्तन करना या सुनना भारतीयों के लिए सनातन धर्म रहा है, अतः ईश्वर-प्रेम में मग्न होकर नाचने और गानेवाले सूफ़ी जब भारत में आये तो जनता उनकी ओर आकृष्ट हुई।

ये सूफ़ी लोग 'जात-पात पूछे ना कोई, हरि को भजै सो हरि का होई'-जैसी बात करते थे। इनके विचार भारतीयों को अपने अन्तर की प्रतिध्वनि प्रतीत होते थे, अतः वे शेख़ मुईनुद्दीन चिश्ती जैसे सूफ़ियों की ओर खिंचने लगे।

महमूद ग़ज़नवी भी मुसलमान था और ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती भी, परन्तु दोनों दो विभिन्न प्रकारों के मुसलमान थे। यद्यपि पृथ्वीराज शेख़ मुईनुद्दीन चिश्ती की लोकप्रियता से सशंक था, तथापि उन्हें अजमेर से बलात् निकालने का साहस उसे न हुआ।

सूफ़ी विचारों को लोकभाषा में व्यक्त करनेवाले भक्त भारतीय गायक भी शेख़ मुईनुद्दीन चिश्ती अजमेरी को सुलभ हो गये, उन गायकों का गाना सुनने के लिए भीड़ इकट्ठी होने लगी। हिन्दू समाज द्वारा दलित और उपेक्षित व्यक्तियों को सूफ़ियों के उन दरबारों में स्थान मिला, जहाँ राजा-रंक सब बराबर थे, भारतीय जनता सूफ़ी-परम्परा में दीक्षित होने लगी। 1186 ई. से 1235 ई. तक शेख़ मुईनुद्दीन चिश्ती ने यही कार्य किया और उनके व्यवहार से आकृष्ट होकर एक करोड़ भारतीय 'मुसलमान' हो गये।

चिश्ती-परम्परा ने लोकभाषा सीखी, सामान्य जनता के स्तर पर उतरकर सरल शब्दों में अपनी बात कही, वे भारत के लोकजीवन में रमे, इन्होंने यहीं की धुनों में अपने गीत गाये।

साथ ही साथ मुहम्मद ग़ोरी और उसके उत्तराधिकारी अपने साम्राज्य का विस्तार भी करते रहे। इन मुसलमान सुल्तानों के दरबारों में विभिन्न मुस्लिम देशों से गायक और वादक भी आते रहे, मुस्लिम संगीत-शास्त्री भी आये, विदेशों की धुनें भी यहाँ प्रचलित हुईं। कुछ गायक सूफ़ियों के सम्पर्क में भी आये, अतः सूफ़ियों के ख़ानक़ाह भारतीय और अभारतीय गान-शैलियों का संगम-स्थल हो गये।

राज-दरबारों में प्रायः तुर्की या फ़ारसी का बोलबाला था, सूफ़ियों के दरबारों में लोकभाषा भी चलती थी।

शनैः-शनैः ऐसे मुसलमानों की संख्या में वृद्धि होने लगी जो भारतीय नारियों के गर्भ से उत्पन्न विदेशी मुसलमानों की सन्तान थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बादशाहों में कैकुबाद और विद्वानों, कवियों और संगीतज्ञों में अमीर ख़ुसरो जैसे व्यक्ति इसी वर्ग में आते हैं। इन लोगों को जहाँ अपनी पितृभाषा और पितृ-धर्म से स्नेह था, वहाँ मातृभूमि, मातृभाषा और मातृकुल की रीति-नीति और आचार-व्यवहार से भी। मिश्रित रक्त के ये, भारत में उत्पन्न, मुसलमान अमीर ख़ुसरो के रूप में जहाँ दरबारों में अपनी प्रतिभा के कारण विदेशी मुसलमानों से सफल प्रतिस्पर्धा करते थे, वहाँ सूफ़ियों के दरबारों में उनके अकिंचन मुरीद थे।

इनकी प्रेम-प्रधान ग़ज़लों का अर्थ यदि दरबारों में वासनापरक था, तो ख़ानक़ाहों में होनेवाली क़व्वालियों की गोष्ठी में भक्तिपरक।

अपने विचारों का प्रतिपादन, प्रचार और प्रसार प्रत्येक वर्ग चाहता है, चिश्ती-परम्परा के सूफ़ी योजनापूर्वक शीघ्र ही भारत-भर में फैल गये। कभी मुस्लिम शासकों ने इनका सहयोग लिया और कभी इन्हें सताया।

मुसलमान सुलतानों के दरबार में क़ाज़ी भी थे, जिनकी दृष्टि में संगीत त्याज्य था और सूफ़ियों के मुरीद अमीर भी थे जो गाना सुनते थे। शासन को दोनों ही वर्गों की आवश्यकता थी। वह दोनों पक्षों में सन्तुलन बनाये रखता था। विजित प्रदेशों में जहाँ मस्जिदें बनवायी जाती थीं, मदरसे खुलवाये जाते थे, वहाँ सूफ़ियों के ख़ानक़ाहों की भी स्थापना की जाती थी।

सूफ़ियों के प्रसार से एक ऐसी भाषा का जन्म हुआ, जिसे 'हिन्दी' कहा गया। विभिन्न प्रदेशों में प्रादेशिक प्रभाव भी इस हिन्दी पर हुआ, परन्तु इसका एक सार्वदेशिक रूप भी रहा।

दक्षिण के पण्डितों ने इसे 'तुरुष्क भाषा' कहा, तो सूफ़ियों की परम्परा में इस भाषा का नाम 'दकनी' अथवा 'दकनी हिन्दी' पड़ा। गुजरात में इसे गूजरी भी कहा गया, परन्तु देश-भर में इसका नाम 'हिन्दी' ही रहा।

उस समय 'हिन्दुस्तान' शब्द उत्तर भारत अर्थ का बोध कराता था और दक्षिण भारत के लिए 'दकन' शब्द था।

दकनी भाषा में प्रचारात्मक सूफ़ी काव्य की रचना हुई, तो दक्षिण भारत के कुछ बादशाहों और कवियों ने इसमें शृंगार-काव्य भी लिखा। सूफ़ी सिद्धान्तों का प्रतिपादन गद्य में हुआ, आख्यान-काव्य भी लिखे गये।

हिन्दी में जो गेय रचनाएँ लिखी गयीं उन्हें भारतीय धुनों में भी गाया गया और ईरानी धुनों का प्रयोग भी उनमें हुआ।

एक समय वह आया, जब सूफ़ी संगीतज्ञों को इन प्रचलित धुनों या रागों के वर्गीकरण की आवश्यकता हुई। फलतः ईरानी दृष्टि से इन धुनों का वर्गीकरण किया गया।

भारतीय संगीत पर मुसलमानों का प्रमुख प्रभाव रागों का ईरानी दृष्टि से वर्गीकरण है।

आज 'ख़याल' का अर्थ कुछ भी हो गया हो, परन्तु भारतीय संगीत को यह सूफ़ियों की देन है और इसका अर्थ वह रचना है, जो एक विशिष्ट विचार प्रस्तुत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करे। 'ख़याल' शीर्षक से कुछ काव्य के नमूने यथास्थान मिलेंगे।

'नुक्ता' और 'जकरी' को आज के लोग भूल गये हैं, उनके नमूने भी पाठकों को मिलेंगे। 'जकरियों' पर नाच भी होता था। शिवाजी के पिता शाहजी के संगीतशास्त्री वेद नामक पण्डित ने अपने संस्कृत-ग्रन्थ 'संगीतमकरन्द' में जकरी नृत्य की चर्चा की है, संगीतनारायण (रचनाकाल 16वीं शती ई.) ने भी 'जगडी-नृत्य' कहकर इसका लक्षण किया है।

'गीत' में चार अंग स्वर, शब्द, ताल और लय होते हैं, अतः स्वरशास्त्र के अंग मुक़ाम-सिद्धान्त (मेल-पद्धति या ठाठ-पद्धति) के प्रचार, सूफ़ियों की भाषा और उसके नमूनों पर संक्षिप्त विचार आवश्यक है।

सूफ़ियों का दृष्टिकोण, मुस्लिम शासन के साथ उनके सम्बन्ध, सूफ़ियों की संगीत-रुचि, मुस्लिम नरेशों की संगीत-रुचि तथा ईरानी मुकाम-सिद्धान्त से प्रभावित संक्षिप्त परिचय अगले पृष्ठों में आवश्यक समझा गया है।

सन्दर्भ

1. तैत्तिरीय ब्राह्मण, पृ. 3, 9, 14
2. वही, पृ. 1, 2, 3
3. श्रीमद्भागवत, पृ. 11, 2, 39

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुस्लिम शासन और सूफ़ी

"यदि यह कहा जाये कि भारत में जो बड़ी-बड़ी हुकूमतें क़ायम हुईं, उनके लिए चिश्ती-परम्परा के सूफ़ियों ने मार्ग समतल कर दिये, तो अनुचित न होगा।"[1]

यही बात सूफ़ियों की प्रत्येक परम्परा के लिए कही जा सकती है।

"मुसलमान सूफ़ी हिन्दुस्तान में कठिन और दुर्गम मार्गों, गगनचुम्बी पर्वतों और निर्जन वनों को पार करके ऐसे स्थानों पर पहुँचे, जहाँ कोई इस्लाम और मुसलमानों के नाम से भी परिचित न था, जहाँ उनके लिए प्रत्येक वस्तु अपरिचित और उनकी रुचि के प्रतिकूल थी, जहाँ का जलवायु, रीति-नीति, सूरत-शक्ल, शिष्टाचार, वेशभूषा, बातचीत अर्थात् प्रत्येक वस्तु ऐसी थी कि उनको भारतीयों से और भारतीयों को उनसे वहशत (आशंका, भय हो)।"[2]

अर्थात् अपने विचारों के प्रचार के लिए मुस्लिम सूफ़ी उस युग में यहाँ आ गये थे, जिस युग में किसी मुस्लिम आक्रान्ता का पैर भारत-भूमि पर न पड़ा था। ये लोग एक प्रकार से वे लोग थे, जिन्होंने यहाँ आकर यहाँ के विभिन्न मार्गों से परिचय प्राप्त किया, भारतीयों के आचार-विचार को समझा, भारतीय भाषाओं से परिचय प्राप्त किया, हिन्दू समाज की दुर्बलताओं को समझा और जनसाधारण के मन पर अधिकार करने के लिए अपने विचारों का प्रतिपादन उस क्षेत्र की भाषा में किया, जहाँ इनके 'ख़ानक़ाह' थे। इन सूफ़ियों का सम्बन्ध अपने मूल स्थानों से बना रहता था। इन लोगों के मुसलमान शिष्य मुस्लिम देशों की यात्रा करके भारत में मुस्लिम विचारों के प्रचार की सम्भावनाएँ बताते थे।

यह ऐतिहासिक तथ्य है कि जहाँ-जहाँ भारत में मुस्लिम आक्रान्ता आये, वहाँ-वहाँ सूफ़ी फ़क़ीर पहले से विद्यमान थे। आक्रान्ताओं की सेना के साथ भी आलिम और सूफ़ी रहा करते थे।

शेख सालार मसऊद (मृ. 1033 ई.) महमूद ग़ज़नवी के प्रधान सहायक थे, जो हिन्दुओं से युद्ध करते हुए मारे गये। इनका मज़ार बहराइच में है, जहाँ प्रतिवर्ष मेला लगता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'दाता गंजवख्श' के नाम से प्रसिद्ध (मृ. 1072-1079 के मध्य में) शेख़ अली हजूरी की समाधि लाहौर में है। इनकी मृत्यु पृथ्वीराज की पराजय से प्रायः सवा सौ वर्ष पूर्व हुई। दक्षिण भारत में मुस्लिम सूफ़ी पृथ्वीराज की पराजय से पर्याप्त पूर्व पहुँच चुके थे। हाजी सूफ़ी (मृ. 1160 ई.) में इन लोगों में प्रसिद्ध हैं।

सामान्यतया यह समझा जाता है कि दक्षिण भारत पर मुस्लिम प्रभाव अलाउद्दीन के आक्रमणों के पश्चात् पड़ा, परन्तु यह धारणा ठीक नहीं है।

दक्षिण भारतवासी सैयद शाह मोमिन आरिफुल्लाह की मृत्यु 1200 ई. में हुई, अर्थात् ये भी पृथ्वीराज की पराजय से पूर्व दक्षिण पहुँच चुके थे।

शेख़ जलालुद्दीन गंज रावाँ की मृत्यु 1245 ई. में हुई, इससे एक वर्ष पश्चात् नासिरुद्दीन महमूद दिल्ली के राज्य-सिंहासन पर बैठा था और निज़ामुद्दीन चिश्ती दिल्ली से चिश्तिया आन्दोलन का संचालन कर रहे थे।

दक्षिण भारतवासी सैयद अहमद कवीर की मृ. 1260 ई. में हुई, यह नासिरुद्दीन महमूद का शासन-काल था।

वावा मंजर भी दक्षिण भारत में स्वर्गवासी हुए, इनका मृत्यु वर्ष 1263 ई. है, इस समय भी दिल्ली में सुलतान महमूद का शासन-काल था।

शाह अली पहलवान 1273 ई. में स्वर्गवासी हुए, इस समय दिल्ली पर ग़यासुद्दीन वलवन शासन कर रहा था।

शाह हुस्सामुद्दीन भी 1281 ई. में दक्षिण भारत में ही स्वर्गवासी हुए, यह भी वलवन का ही शासन-काल था। सूफ़ी सरमस्त भी 1281 ई. में ही स्वर्गवासी हुए।

वावा शफ़ुद्दीन 1288 ई. में, बाबा शहाबुद्दीन 1291 ई. में, बावा फखरुद्दीन 1294 ई. में और सैयद अज़ीजुद्दीन हुसेनी 1299 ई. में स्वर्गवासी हुए।

भले ही सूफ़ी सन्त किसी युग में वादशाहों से सम्बन्ध न रखते हों, परन्तु प्रसिद्ध शेख़ मुईनुद्दीन चिश्ती अजमेरी मुहम्मद ग़ोरी की सेनाओं के साथ भारत आये और अन्ततः अजमेर में वसे। पृथ्वीराज पर मुहम्मद ग़ोरी की विजय की भविष्यवाणी इन्होंने पृथ्वीराज की पराजय से पूर्व ही कर दी थी।[3]

मुहम्मद ग़ोरी के प्रतिनिधि कुतुबुद्दीन ऐवक़ ने शेख़ मुईनुद्दीन चिश्ती को गाँव दिये थे।[4]

कुतुबुद्दीन ऐबक़ की मृत्यु के पश्चात् शम्सुद्दीन इल्तुतमिश सम्राट् हुआ। इसके राज्य-काल में अजमेर के शासक ने मुईनुद्दीन चिश्ती की जागीर ज़ब्त कर ली। इस जागीर को वचाने के लिए शेख़ मुईनुद्दीन चिश्ती अजमेर से स्वयं देहली आये और अपने मुरीद और खलीफ़ा कुतुबुद्दीन वख्तयार काकी के पास ठहरे। कुतुबुद्दीन वख्तयार काकी अपने पीर की जागीर छुड़ाने के लिए स्वयं शम्सुद्दीन इल्तुतमिश के पास गये और जागीर के विषय में अनुकूल आदेश प्राप्त किये।[5]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह घटना सिद्ध करती है कि भारत में चिश्ती-परम्परा के प्रवर्तक शेख़ मुईनुद्दीन चिश्ती जैसे सन्त के सांसारिक हितों की सिद्धि राज्य से होती थी और ऐसे कार्यों के लिए शेख़ कुतुबुद्दीन बख़्तयार काकी जैसे महापुरुष भी सुलतानों की सेवा में उपस्थित होते थे।

मुस्लिम विजेता जिस प्रदेश को भी अपने अधीन करते थे, वहाँ मस्जिदों, मदरसों और ख़ानक़ाहों (सूफ़ी मठों) का निर्माण अवश्य करते थे और 'माले ग़नीमत' (लूट के माल) में से सूफ़ियों और आलिमों को भी हिस्सा देते थे।

सूफ़ी सन्तों के रिश्तेदार राजकीय सेवाओं में भी नियुक्त होते थे। सूफ़ी लोग जनता की भाषा में अपने विचारों का प्रचार करते थे, इन लोगों के चमत्कारों की प्रसिद्धि भी जनता को इन फ़क़ीरों की ओर आकृष्ट करती थी।

सूफ़ियों का प्रभाव जनता पर होता था और शासन-दण्ड सुलतानों के हाथ में था। दोनों पक्ष अपनी-अपनी दृष्टि से दूसरे पक्ष का उपयोग चाहते थे। अपने कृपापात्र बादशाहों के दोषों अथवा अत्याचारों की ओर से शेख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती जैसे महान् सूफ़ी भी तटस्थ रहते थे। जलालुद्दीन खिलजी का हत्यारा अलाउद्दीन खिलजी शेख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती का कृपापात्र था, तो निज़ामुद्दीन चिश्ती के जनाज़े को कन्धा देनेवाले मुहम्मद तुग़लक ने शेख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती के ख़लीफ़ा शेख़ नसीरुद्दीन चिराग़ देहली पर भी मनमाने अत्याचार करने में संकोच नहीं किया था।

यदि भावना को एक ओर रखकर देखा जाये तो यह स्पष्ट है कि इस्लाम का प्रचार दोनों पक्ष चाहते थे। कोई पक्ष भी प्रसन्नतापूर्वक पारस्परिक संघर्ष न चाहता था। सूफ़ियों के ख़ानक़ाहों में बादशाह लोग अपने गुप्तचर भेजते थे। शेख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती के गुरु-बन्धु सीदी मौला नामक सूफ़ी को प्राण-दण्ड इसलिए दिया गया था कि गुप्तचरों की सूचना के अनुसार सीदी मौला बादशाह बनना चाहते थे।

सूफ़ियों के मुरीद राजपुरुष भी दरबार की गुप्त सूचनाएँ अपने पीरों को पहुँचाते थे। अमीर ख़ुसरो ने यह गुप्त सूचना शेख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती को दी थी कि जलालुद्दीन खिलजी छद्मवेष में ख़ानक़ाह में आना चाहता है।

कुतुबुद्दीन खिलजी और गयासुद्दीन तुग़लक की मृत्यु में अंग्रेज़ इतिहासकारों को शेख़ निजामुद्दीन चिश्ती के कुछ मुरीदों के द्वारा किये हुए षड्यन्त्र की गन्ध आती है।

शेख़ नसीरुद्दीन चिराग़ देहली शेख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती के ख़लीफ़ा थे और शेख़ बन्दानवाज़ गेसूदराज़ चिराग़ देहली के ख़लीफ़ा और मुरीद थे। शेख़ बन्दा-नवाज़ गेसूदराज़ ने फ़ीरोज़शाह बहमनी (रा. का. 1397-1422) का आश्रय लिया, जो शिया-सम्प्रदाय का अनुयायी था। यह स्थिति बताती है कि सूफ़ी सन्त समय को देखकर कार्य करते थे।

शेख़ समाउद्दीन का अनुग्रह सिकन्दर लोदी (रा. का. 1488-1517) पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

था। शेख़ का विचार था कि फ़क़ीरों को बादशाहों के मेल से बड़ा ही सांसारिक लाभ होता है और अनेक दरिद्रियों के कार्य उनके द्वारा सम्पन्न हो जाते हैं, यह पुण्य-कार्य है।[6]

ग्वालियर के शेख़ मुहम्मद ग़ौस के बताये हुए उपाय से ही बाबर के प्रतिनिधि रहीमदाद ने छलपूर्वक ग्वालियर के दुर्ग पर अधिकार किया था।[7]

शेख़ मुहम्मद ग़ौस के बड़े भाई शेख़ बहलोल का उपयोग हुमायूँ ने अपने भाई मिर्ज़ा हिन्दाल को समझाने के लिए किया। परन्तु हिन्दाल ने शेख़ बहलोल की हत्या कर दी।[8] 'अकबरनामा' के अनुसार शेख़ बहलोल की गणना हुमायूँ के अच्छे सेवकों में थी।

यह स्थिति बताती है कि सूफ़ी लोग उस समय बादशाही सेवकों में आ गये थे।

अकबर शेख़ सलीम चिश्ती का तो भक्त था ही, परन्तु अन्ततोगत्वा वह दीने-इलाही का प्रवर्तक और जगद्गुरु बन गया था। अकबर ने गुजरात के प्रसिद्ध सन्त ख़्वाजा हसन मुहम्मद चिश्ती (मृ. 1574 ई.) की सेवा में एक सहस्र स्वर्ण-मुद्राओं के साथ बारह गाँवों का दानपत्र भेजा था। यह उपहार स्वीकृत न किया गया। ख़्वाजा हसन मुहम्मद चिश्ती के सरदादा कमालुद्दीन शेख़ नसीरुद्दीन चिराग़ देहली के ख़लीफ़ा और भानजे थे।[9]

शेख़ हसन मुहम्मद चिश्ती के पुत्र शेख़ मुहम्मद आज़म चिश्ती की सेवा में सम्राट् शाहजहाँ ने एक लाख रुपयों के साथ-साथ पाँच गाँवों का दानपत्र भी भेजा था, साथ ही साथ सम्राट् ने अपने हाथ से तैयार की हुई एक गुदड़ी और टोपी भी भेजी थी।

शेख़ ने गुदड़ी एक फ़क़ीर को दे दी और टोपी एक मुरीद को। अवशिष्ट वस्तुएँ लौटा दीं। शेख़ मुहम्मद आज़म चिश्ती का स्वर्गवास 1630 ई. में हुआ।[10]

और तो और, औरंगज़ेब शेख़ मुहीउद्दीन याह्या मदनी चिश्ती (मृ. 1689 ई.) की सेवा में सम्राट् होने से पूर्व उपस्थित हुआ था। शेख़ ने उसके सम्राट् होने की भविष्यवाणी की थी। सम्राट् होने के पूर्व औरंगज़ेब इनकी सेवा में दो सौ रुपये प्रतिवर्ष भेजता था और सम्राट् होने के पश्चात् एक सहस्र रुपये वार्षिक भेजने लगा। ये भी अन्य चिश्ती सन्तों की भाँति संगीतानुरागी थे। जब औरंगज़ेब ने संगीत पर प्रतिबन्ध लगाया, तब इन्होंने उसे पत्र लिखकर सूफ़ी-संगीत पर लगाये प्रतिबन्ध को अनुचित ठहराया था।[11]

जब औरंगज़ेब दक्षिण में उलझा हुआ था, तब शाह कलीमुल्लाह जहानाबादी (मृ. 1728 ई.) दिल्ली में रहकर चिश्ती सिद्धान्तों का प्रचार कर रहे थे।[12] और इन्होंने अपने ख़लीफ़ा और मुरीद शाह निज़ामुद्दीन औरंगाबादी को दक्षिण भेजा। उन्होंने उस ओर एक लाख मुरीद बनाये।[13] वेंकटमखी के 'मारवा' जैसे राग दक्षिण में प्रचलित हुए। यह कार्य एक प्रकार से औरंगज़ेब की सहायता ही था।

सम्राट् शाह आलम शाह फ़ख़रुद्दीन (मृ. 1777 ई.) का मुरीद था। अकबर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वितीय और बहादुरशाह ज़फ़र शेख़ ग़ुलाम कुतुबुद्दीन के मुरीद थे।

फ़ीरोज़ बहमनी (रा. का. 1397-1422 ई.) और उसका उत्तराधिकारी अहमदशाह बहमनी बन्दानवाज़ गेसूदराज़ (मृ. 1421 ई.) के भक्त थे। फ़ीरोज़ बहमनी ने गुजरात से शेख़ सिराजुद्दीन (मृ. 1388 ई.) को बुलाना चाहा, परन्तु वे न आये।

अहमदशाह गुजराती (रा. का. 1411-1441 ई.) शेख़ क़ुतुब आलम (मृ. 1448 ई.) का श्रद्धालु भक्त था।

बीजापुर में आदिलशाही वंश का संस्थापक यूसुफ़ आदिलशाह (रा. का. 1489-1510 ई.) शाह मीरानजी का मुँह जोहता था, तो गोलकुण्डा के कुतुब-शाही राजवंश का सातवाँ सुलतान अब्दुल कुतुबशाह (रा. का. 1625-1672 ई.) ख़ुदावन्द ख़ुदानुमा का चरण-सेवक था।

दिल्ली के सुन्नी सुलतानों को चिश्ती-परम्परा का आशीर्वाद था, तो बीजापुर और गोलकुण्डा के शिया सुलतान भी चिश्ती सन्तों के अनुग्रह-भाजन थे। इस नीति से चिश्ती-परम्परा के सूफ़ियों की नीति का लचीलापन सिद्ध होता है। इस परम्परा के सूफ़ियों की दृष्टि में मुसलमानों का व्यापक हित था।

सूफ़ी और मौलवी

" 'सूफ़ी' शब्द की उत्पत्ति 'सूफ़' (ऊनी कम्बल) से हो या 'सफ़ा' (स्वच्छता) से, वह धार्मिक और नैतिक जगत् में एक विशिष्ट स्थान का अधिकारी है। वह देश और सम्प्रदाय की ओर से तटस्थ है तथा प्रत्येक जाति और प्रत्येक धर्म में पाया जाता है। वह एक प्रकार का विद्रोही है, जो अन्तर को भावनाहीन बना देनेवाली रूढ़ियों अथवा दिखावों को उचित नहीं मानता और उनके विरुद्ध विद्रोह की पताका फहराता है।

मौलवी और सूफ़ी में अन्तर यह है कि वह बहिरंग को देखता है और यह अन्तरंग को। वह शब्द देखता है और यह अर्थ। वह अनुकरण और कर्मकाण्ड का दास है और यह ऐसी वस्तुओं से दु:खी। उसकी दृष्टि दोषों पर पड़ती है और यह बुरे-से-बुरे में भी भलाई का पक्ष ढूँढ़ निकालता है। वह धिक्कार और तिरस्कार से काम लेता है और यह दया एवं स्नेह से। वह हिंसा और कठोरता का अवलम्बन करता है और यह करुणा एवं सौहार्द का। वह बहुत कम क्षमा करता है और इसका स्वभाव ही दोषों की उपेक्षा करना है। वह आत्म-गर्व और आत्म-प्रदर्शन से बड़ा बनता है और यह विनम्रता और विनय से मन में समा जाता है। वह दूसरों के दोषों का उद्घाटन करता है और यह आत्म-निरीक्षण करता है।

मौलवी सबको एक लाठी से हाँकता है, परन्तु सूफ़ी प्रत्येक व्यक्ति की रुचि देखता है और उसी के अनुसार उसका संस्कार करता है। इस प्रयोजन के लिए कभी-कभी 'शरीअत' (धार्मिक विधि-विधान) की अथवा बाह्य आचारों की भी उपेक्षा कर देता है। उसकी दृष्टि परिणाम की ओर होती है, वह मौलवी की भाँति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्दों का दास नहीं होता, अर्थ को देखता है। वास्तविक सूफ़ी बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक होता है। यद्यपि वह एक प्रकार से संसार में लिप्त नहीं होता और मौलवी उसकी अपेक्षा कहीं अधिक दुनियादार होता है, परन्तु वह लोकरुचि को मौलवी की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छे रूप में पहचानता है।

वह दिलों को टटोलता है, उनकी गहराइयों तक पहुँचता है और जहाँ पूर्वग्रह छिपे होते हैं, वहाँ तक पहुँच जाता है, मौलवी की दृष्टि वहाँ नहीं पहुँचती। सूफ़ी अन्दर तक की चोरियों को सरलतापूर्वक इस प्रकार पकड़ लेता है कि 'मुरीद' को पता भी नहीं चलता। उसका प्रधान लक्ष्य दिलों को हाथ में लाना है और इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए किसी बाह्य धार्मिक अथवा अधार्मिक बाधा की चिन्ता नहीं करता, सबको तोड़कर रख देता है। यह ठीक भी है, जब दिल हाथ में आ गया, तब मानो सबकुछ मिल गया, किसी दिल का हाथ में लाना किसी नये संसार पर अधिकार करने की अपेक्षा कम नहीं है।

इसीलिए आलिमों और सम्राटों से भी वह काम नहीं हो सकता, जो फ़क़ीर और दरवेश कर डालते हैं। बादशाह के दरबार में विशिष्ट व्यक्तियों का प्रवेश होता है, फ़क़ीर के दरबार में छोटे-बड़े, धनी-निर्धन, विद्वान्-मूर्ख सभी जा सकते हैं। बादशाह जान-माल का मालिक है, फ़क़ीर का कब्ज़ा दिलों पर होता है। बादशाह का प्रभाव सीमित होता है और सूफ़ी का प्रभाव निस्सीम। यही कारण है कि फ़क़ीरों के पास वह शासन होता है, जो बड़े-बड़े प्रतापी बादशाहों और विजेताओं के पास नहीं होता। सूफ़ी के सम्मुख बादशाह भी सिर झुकाते आये हैं।"[14]

मुसलमानों में जब साम्राज्यवाद का उदय हुआ, तब मुसलमान सूफ़ी शासन की उपेक्षा करने लगे। यह चर्चा आदर्श सूफ़ी बुज़ुर्गों की है। सूफ़ी कहलानेवाले प्रत्येक फ़क़ीर को शासन से असम्बद्ध नहीं कहा जा सकता।

जनता पर सूफ़ियों का प्रभाव होने के कारण मुस्लिम सम्राट् चाहते थे कि ये लोग शासन-तन्त्र का अंग बन जायें। प्रसिद्ध मुस्लिम विधिशास्त्री इमाम अबूहनीफ़ा (जिनके अनुयायी हनफ़ी कहलाते हैं) को यज़ीद के गवर्नर ने कूफ़े का मीर मुंशी और कोषाध्यक्ष बनाना चाहा, परन्तु इमाम अबूहनीफ़ा ने स्वीकार न किया। यज़ीद ने आदेश दिया कि यदि उसकी आज्ञा इमाम अबूहनीफ़ा न मानें, तो उनको प्रतिदिन दस कोड़े लगाये जायें। जब यह भी हो चुका, तो मंसूर ने 'क़ाज़ी' का पद स्वीकृत करने का प्रस्ताव किया। इस प्रस्ताव को अस्वीकृत करने पर इमाम साहब को जीवन के अन्तिम क्षण तक बन्दीगृह में बिताने पड़े।[15]

ख्वाजा फ़ज़ील बिन अयाज़ के खानक़ाह में, दर्शन के लिए, खलीफ़ा हारूँरशीद बलात् प्रविष्ट हो गया, तब ख्वाजा ने दीपक बुझा दिया, जिससे खलीफ़ा पर उनकी दृष्टि न पड़ सके।

विजय और लूटमार की दृष्टि से ही किये जानेवाले अभियान इस्लाम की सेवा नहीं हैं। दातागंजबख़्श ने कहा है—"एक व्यक्ति ने नीलवस्त्रधारी एक फ़क़ीर से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूछा कि आपने ये शोकसूचक वस्त्र क्यों धारण किये हैं ? उसने उत्तर दिया कि हज़रत मुहम्मद ने तीन वस्तुएँ, फ़क़ीरी, विद्या और खड्ग, हम लोगों के लिए छोड़ी थीं। तलवार बादशाहों ने सँभाली और उसका दुरुपयोग किया, विद्वानों ने विद्या पढ़ी, परन्तु उसके अनुसार आचरण न किया, फ़क़ीरों ने फ़क़ीरी बाना तो पहना, परन्तु वे शासकों की कठपुतली बन गये।"[16]

दातागंजबख्श जैसे सन्त के उपर्युक्त शब्द वास्तविक स्थिति का चित्रण करते हैं।

सूफ़ी और संगीत

प्रत्येक धर्म की दृष्टि में 'व्यसन' अनुचित है। व्यसन व्यक्ति को उचित मार्ग से हटाता है। कर्त्तव्य से विमुख करनेवाला प्रत्येक कार्य अधर्म है। जिस कार्य से मनुष्य की सर्वांगीण उन्नति हो, वह धर्म है। जो कार्य मनुष्य के उचित विकास में बाधक हो, वह अधर्म है। वासनाओं को अनुचित रूप में उभारनेवाला गीत-नृत्य किसी भी धर्म में प्रशंसनीय नहीं कहा गया।

वीणापाणि सरस्वती को माँ कहा जाता है, वे ज्ञान और कला की अधिष्ठात्री देवी हैं। अप्सराएँ स्वयं को माँ कहलवाना ही नहीं चाहतीं। बेचारे अर्जुन ने उर्वशी को माँ कहा, तो उसने इसे अपने रूप और यौवन का अपमान समझकर अर्जुन को नपुंसक हो जाने का शाप दे दिया।

बात अत्यन्त स्पष्ट है। क़व्वाली सुनकर भाव-मग्न हो जानेवाले, आनन्द में झूमकर नाचनेवाले, चाहे हमीदुद्दीन् नागौरी हों, या चैतन्य महाप्रभु, इन्हें पापी कौन कह सकता है। इस गान-वादन से मेनका के उस गीत और नृत्य का क्या सम्बन्ध है, जो तपस्वी विश्वामित्र को योगभ्रष्ट करने के लिए किया गया था।

हज़रत मुहम्मद का समसामयिक हारिस का पुत्र नज़र एक गीत-नृत्य-मर्मज्ञ-दासी मोल ले आया। जब वह सुनता कि कोई व्यक्ति मुसलमान होना चाहता है, तो उससे कहता कि मुहम्मद नमाज़ पढ़ने, रोज़: (उपवास) रखने और जिहाद (धर्म के लिए युद्ध)करने के लिए कहते हैं, उनकी बात मानने की अपेक्षा अच्छा तो यह है कि इस सुन्दरी की कला का आंनन्द लिया जाये।[17] ऐसी स्थिति में संगीत को त्याज्य न कहा जाता, तो क्या किया जाता।

विवाह के पश्चात् एक नववधू अपनी ससुराल पहुँची, तो हजरत मुहम्मद ने घर के लोगों से कहा कि क्या कोई गानेवाली औरत न थी, जो विदा के समय वर के घर गाती।[18] स्पष्ट है कि ऐसे समय मंगल-गीत गाये जाते हैं, वर-वधू के लिए ईश्वर से शुभकामना की जाती है, भला मुहम्मद साहब ऐसे मंगल-गीतों को त्याज्य क्यों कहते।

अस्तु, संगीत की ग्राह्यता और त्याज्यता के विषय में मौलवियों और सूफ़ियों में सदैव मतभेद रहा है। शब्दों से चिपके रहनेवाले मौलवी जहाँ गाना, बजाना, नाचना सर्वथा वर्जित समझते आये हैं, वहाँ ईश्वर के ध्यान में आत्म-विस्मृत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होकर गाना, बजाना, नाचना शेख़ जुनैद बग़दादी (मृ. 911 ई.) तथा शेख़ अबूबक्र शिब्ली (मृ. 946 ई.) जैसे सूफ़ियों की दृष्टि में वैध ही नहीं आवश्यक भी है।

शेख़ मुईनुद्दीन चिश्ती की संगीत-मर्मज्ञता के विषय में कुछ भी कहा जाना सम्भव नहीं, परन्तु उनकी सेवा में ऐसे क़व्वाल थे, जो हिन्दी में सूफ़ी विचारधारा के प्रतिपादक गाने गाते थे।

भारतवर्ष में सूफ़ियों की सुहरवर्दी परम्परा के संस्थापक शेख़ बहाउद्दीन ज़करिया मुलतानी (मृ. 1267 ई.) संगीत के महान् आचार्य और संरक्षक थे।

शेख़ कुतुबुद्दीन बख़्तयार काकी (मृ. 1236 ई.) का तो स्वर्गवास ही क़व्वाली सुनते-सुनते हुआ था।

शेख़ फ़रीदुद्दीन गंजशकर (मृ. 1256 ई.) भी संगीतानुरागी थे।

ख़्वाजा निज़ामुद्दीन चिश्ती की संगीत-मर्मज्ञता के विषय में कुछ कहा जाना सम्भव नहीं, परन्तु वे क़व्वालों का गाना सुनकर नाचने लगते थे, कभी-कभी तो कई-कई दिन तक भाव-मग्न रहते थे। गयासुद्दीन तुग़लक़ के युग में इन्होंने 'समा' के औचित्य के विषय में एक प्रसिद्ध शास्त्रार्थ करके प्रतिपक्षियों को पराजित किया था।

बाबा गंजशकर के धेवते और शेख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती के मुरीद ख़्वाजा सैयद मुहम्मद इमाम और ख़्वाजा सैयद मूसा महान् संगीत-मर्मज्ञ थे।

जब शेख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती भाव-मग्न होकर नाचने लगते, तब ख़्वाजा सैयद मुहम्मद इमाम भी नाचने लगते थे। क़व्वाली की मजलिस में यही अध्यक्ष बनाये जाते थे। इनकी सेवा में फ़ारसी और हिन्दी गीत गानेवाले अनेक क़व्वाल रहते थे। संगीतशास्त्र के अनुपम व्याख्याता के रूप में इनकी बड़ी प्रसिद्धि है। ये चिकित्साशास्त्र के भी मर्मज्ञ थे।[19]

ख़्वाजा सैयद मुहम्मद इमाम के छोटे भाई ख़्वाजा सैयद मूसा भी संगीत के रहस्यों को समझनेवाले अधिकारी विद्वान् थे, बड़ी दर्द-भरी ग़ज़लें कहते थे। अपने युग में प्रचलित विद्याओं के पण्डित थे, चिकित्साशास्त्र पर इनका भी अद्भुत अधिकार था।[20]

ख़्वाजा निज़ामुद्दीन चिश्ती के ख़लीफ़ा शेख़ नसीरुद्दीन चिराग़ देहली (मृ. 1356 ई.) उनके ख़लीफ़ा ख़्वाजा बन्दानवाज़ गेसूदराज़ (मृ. 1421 ई.) भी परम संगीतानुरागी थे। चिश्ती-परम्परा में संगीत के बीज का आरोपण, प्ररोहण एवं पल्लवन इन्हीं महापुरुषों का कार्य है।

चिश्ती-परम्परा के संगीत की मर्यादाएँ

क़ाज़ी सनाउल्लाह पानीपती (मृ. 1810 ई.) ने संगीत सुनने के पक्ष में कुछ 'हदीसें' (हज़रत मुहम्मद साहब की प्रामाणिक उक्तियाँ) अपनी पुस्तक 'रिसाल: समा व मज़ामीर' में उद्धृत की हैं और उनसे निष्कर्ष निकाला है, जिसके अनुसार गाने के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषय, गायक, श्रोता, समय, स्थान, उपस्थित जनसमूह और वाद्यों के विषय में निम्नलिखित शर्तें रखी हैं—

विषय : गाने का विषय ऐसा होना चाहिए, जिसमें न तो कोई इस्लामविरोधी बात हो और न किसी जीवित नर-नारी के सौन्दर्य की चर्चा हो।

गायक : गायक संगीतजीवी न हो और सच्चरित्र हो।

श्रोता : श्रोता इन्द्रियजयी हो और वासना के वशीभूत होनेवाला न हो।

समय : नमाज़ के समय के अतिरिक्त अन्य किसी समय गाना सुना जा सकता है।

स्थान : गोष्ठी का आयोजन ऐसे मकान में होना चाहिए, जो एकान्त में हो।

गोष्ठी में उपस्थित जनसमूह : गोष्ठी में उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति सच्चरित्र और समानशील हो।

वाद्य (मज़ामीर) : सुषिर वाद्य 'मज़ामीर' कहलाते हैं, बाँसुरी, नफ़ीरी और शहनाई जैसे वाद्य 'मज़ामीर' हैं। हाथ या लकड़ी के आघात से बजाये जाने-वाले दफ़, ढोल, नक्कार: जैसे वाद्य 'मआज़िफ़' कहलाते हैं।

यदि वाद्यों से ईश्वर-प्रेम की प्रेरणा मिलती हो, तो उनका प्रयोग ग्राह्य है।[21]

अन्य अवसरों पर संगीत की ग्राह्यता

कुछ हदीसों के अनुसार लड़की के विवाह के पश्चात् उसकी विदा के समय, विवाह के समय, ईद के दिन, श्रेष्ठ पुरुषों के स्वागत के अवसर पर, हर्षोत्सव में, परदेश से लौटनेवाले व्यक्ति के स्वागतार्थ, बालक के जन्म पर, लड़कों के अक्षरारम्भ के समय, सामूहिक भोजन के समय गाना-बजाना या उसका सुनना विहित है।

विवाहोत्सव के समय, सेना के प्रयाण के अवसर पर वाद्यों का प्रयोग विहित है।

कुछ लोगों की दृष्टि में अपनी पत्नी अथवा दासी से गाना सुनना अनुचित नहीं है।

ईश्वर-भक्ति को उद्दीप्त करने के लिए गाना, यहाँ तक कि भावावेश में आकर नाचना भी कुछ मुस्लिम व्यवस्थापकों के अनुसार विहित है।[22]

विभिन्न हदीसों का निष्कर्ष यही है कि ईश्वर की ओर मन को एकाग्र करने के लिए गाना-बजाना सर्वथा उचित है।

पवित्र कुर्आन में संगीत के अनुरागियों से सम्बद्ध कोई उक्ति नहीं।

सन्दर्भ

1. अब्दुल ग़फ़ूर, पृ. 102
2. अब्दुल हक़, पृ. 7

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

3. ख्वाजा हसन निज़ामी, पृ. 99
4. वही, पृ. 100
5. वही, पृ. 101
6. उत्तर तैमूरकालीन भारत, पृ. 331-332
7. मुग़लकालीन भारत, बाबर, पृ. 219-220
8. मुग़लकालीन भारत, हुमायूं, पृ. 64
9. अब्दुल ग़फ़ूर, पृ. 104-142
10. वही, पृ. 159-162
11. वही, पृ. 163-166
12. वही, पृ. 163-165
13. वही, पृ. 122-176
14. डॉ. अब्दुल हक़, पृ. 1-3
15. अब्दुल ग़फ़ूर, पृ. 51-52
16. वही, पृ. 42-43
17. हुक़ूके इस्लाम, पृ. 98
18. वही, पृ. 107
19 सियरुल औलिया, ख्वाजा हसन निज़ामी द्वारा उद्धृत, पृ. 440-445
20. वही, पृ. 446-447
21. 'हुक़ूक़-उल्-इस्लाम'; ले. क़ाज़ी सनाउल्लाह पानीपती; अनुवादक सलीमउद्दीन पानीपती; प्रकाशक पाक एकेडेमी, कराची; संस्करण 1965 ई; पृ. 123-126 का संक्षिप्त रूपान्तर।
22. वही, पृ. 106-123 का निष्कर्ष। पूर्ण विवरण के लिए पूर्वोक्त पृष्ठ देखिए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन्द्रप्रस्थ-मत का जन्म और उसके कारण

मुस्लिमशास्त्र भारतीय दृष्टिकोण से सर्वथा भिन्न था। वह अरब या ईरान का संगीतशास्त्र था। उनकी एक अपनी दृष्टि थी। रागों को भी वे 'मुक़ाम' कहते थे और रागविशेष में प्रयुक्त स्वरावलि को भी। प्रत्येक 'स्थान' (मन्द्र, मध्य, तार) में वे बारह-बारह स्वतन्त्र ध्वनियाँ मानते थे, इन ध्वनियों के बारह स्वतन्त्र नाम थे। अपने सिद्धान्त के अनुसार वे किसी भी राग को अपने ढंग से वर्गीकृत कर सकते थे। 'मुक़ाम-सिद्धान्त' ही आगे चलकर 'संस्थान-पद्धति', 'मेल-पद्धति' या 'ठाठ-पद्धति' कहलाया। यह दृष्टिकोण भारतीय ग्राम-मूर्च्छना-सिद्धान्त से सर्वथा भिन्न है।

अमीर खुसरो का कथन है कि संसार के भिन्न-भिन्न भागों से आकर लोगों ने यहाँ संगीत की शिक्षा ग्रहण करने का प्रयत्न किया, परन्तु वर्षों के प्रयास पर भी उन्हें यहाँ के संगीत का ज्ञान न हो सका।[1]

यह स्थिति बताती है कि मुक़ामवादी विद्यार्थियों के लिए 'ग्राम-मूर्च्छना-सिद्धान्त' का समझना कठिन था। विशेषतया इसलिए और भी कठिन था कि संगीतशास्त्र के वास्तविक विद्वान् या तो विदेशी विद्यार्थियों को उपलब्ध ही न हुए और हुए भी, तो उन्होंने मूर्ति-भंजकों को वेदाश्रित एवं पापहारिणी ग्राम-मूर्च्छना-पद्धति का ज्ञान देना न चाहा।

दोनों सम्भावनाओं पर क्रमशः विचार किया जाये।

अलबेरूनी ने कहा है—

"भारतीय विद्याएँ उन स्थानों से दूर हट गयी हैं, जिन्हें हमने जीत लिया है।"[2] मुस्लिम आक्रान्ता पुस्तकालयों को भी भस्मसात् कर देते थे, अतः हिन्दू विद्वान् अपने ग्रन्थ-भण्डारों को लाद-लादकर दक्षिण भारत में ले गये थे। 'संगीत-रत्नाकर' के प्रणेता शार्ङ्गदेव के पिता कश्मीर छोड़कर देवगिरि में जा बसे थे। संगीत-रत्नाकर के रचनाकाल (1230 ई.) तक नर्मदा से उत्तर का समस्त भारत मुस्लिम शासन के अन्तर्गत आ चुका था और भारतीय ग्राम-मूर्च्छना-पद्धति सर्वथा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बिखर चुकी थी। संगीत-रत्नाकर के टीकाकार सिंह भूपाल ने स्पष्टतया इस तथ्य का प्रतिपादन किया है। जो लोग ग्रामरागों को जानते भी थे, विकार-भय से उन्होंने मनोविनोद के लिए ग्राम-रागों का प्रयोग सार्वजनिक रूप में वर्जित कर दिया था।[3]

ऐसी स्थिति में विदेशी विद्यार्थी क्या तो संगीत सीखते और कौन उन्हें सिखाता।

खुसरो ने ब्राह्मणों से 'कुछ' सीखा था।[4] यह 'कुछ' संगीतशास्त्र नहीं था। ब्रह्महत्या जैसे पाप से मुक्त करा देनेवाली रागजननी जातियों का उपदेश एक मुस्लिम विद्यार्थी को दिया जाना त्रिकाल में असम्भव था।

'क़िरानुस्सादैन' में खुसरो ने कहा है कि मैं ईरानी संगीत-पद्धति से भली-भाँति परिचित हूँ, उसके चारों उसूलों और बारह पर्दों (स्वरबोधक सारिकाओं या पर्दों) को भलीभाँति जानता हूँ।[5] ऐसी स्थिति में खुसरो के लिए यही सम्भव था कि लोक में प्रचलित गीतों की स्वरावलियों को मुक़ाम-पद्धति से वर्गीकृत करते और उन्होंने यही किया भी। वे ब्रज में उत्पन्न हुए थे, अवध और मुलतान में उन्होंने नौकरी की थी, दिल्ली के अनेक सुलतानों का आश्रय उन्हें प्राप्त रहा, दक्षिण के अभियानों में वे सेना के साथ रहे अतएव भारत के विभिन्न भागों से उनका प्रगाढ़ परिचय हुआ, फलतः उन्होंने भारतीय प्रचलित रागों को मुक़ाम-पद्धति से व्यवस्थित किया।

खुसरो के युग में ब्रज, गुजरात, अवध, दक्षिण, ईरान और तूरान के गुणियों की उपस्थिति दिल्ली में थी। गुजरात की रानी कमला अलउद्दीन के अन्तःपुर में थी और गुजरात की सुन्दर संगीतजीवी-जाति 'परवार' के सहस्रों नर-नारी दिल्ली आ गये थे। कमलादेवी की लड़की देवलदेवी और अलाउद्दीन के पुत्र खिज्र खाँ के विवाह की तैयारियाँ तीन वर्ष तक होती रहीं थीं और दक्षिण के अनेक संगीतज्ञ भी दिल्ली आ चुके थे, जिसमें गोपाल नायक जैसे प्रसिद्ध व्यक्ति भी थे और अपनी कृतियों में अलाउद्दीन के प्रताप का वर्णन कर रहे थे।[6]

इसी परिस्थिति में उस सम्प्रदाय का निर्माण हुआ, जो 'इन्द्रप्रस्थ-मत' या 'चतुर्दण्डी-सम्प्रदाय' कहलाया। "चारौ डाँडी बाँधि आये नायक गोपाल" जैसे शब्द ध्रुवपदों में आये हैं और 'चतुर्दण्डी-सम्प्रदाय' की कहानी कहते हैं। यद्यपि गोपाल नायक का कोई भी ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं है, तथापि वेंकटमखी ने—

"कुतः सिद्धयेच्चतुर्दण्डी कुतो गोपालनायकः।"

कहकर गोपाल नायक को चतुर्दण्डी-सम्प्रदाय का प्रवर्तक सिद्ध कर दिया है। आलाप, ठाय, गीत और प्रबन्ध का समुच्चय ही 'चतुर्दण्डी' कहलाता है।

यह आचरण गोपाल नायक के धर्म के विरुद्ध होता, यदि वे 'ग्राम-मूर्च्छना-सिद्धान्त' का स्पष्टीकरण विद्यार्थियों के समक्ष कर देते। उन्होंने चुपचाप ईरानी मुक़ाम-पद्धति को समर्थन दे दिया। मुसलमानों ने इस स्थिति को ही खुसरो की जीत और गोपाल नायक की हार कहा है। वास्तव में अपनी बात मनवाकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अमीर खुसरो जीते और ग्राम-मूर्च्छना-सिद्धान्त को रहस्य रखकर गोपाल नायक जीते। ग्राम-मूर्च्छना-सिद्धान्त को समझने के लिए न तो खुसरो का आग्रह था और न समझाने के लिए गोपाल नायक के मन में उत्साह।

भारतीय और अभारतीय संगीतज्ञों में प्रतियोगिता का आयोजन भी अमीर खुसरो करते थे, परन्तु ये प्रतियोगिताएँ संगीत-सम्बन्धी सैद्धान्तिक शास्त्रार्थ न होकर गान-प्रतियोगिता मात्र थीं।

इसमें सन्देह नहीं कि खुसरो को अपनी भारतीयता पर गर्व था और उन्होंने भारतीय संगीत को विश्व-भर में सर्वश्रेष्ठ कहा है।

अमीर खुसरो ब्रजभाषा-भाषी थे, उनका जन्म एटा ज़िला के पटियाली गाँव में हुआ था। उन्होंने हिन्दी में बहुत अधिक लिखा था, जो आज उपलब्ध नहीं है।

देश की राजधानी दिल्ली में खुसरो के द्वारा जिस इन्द्रप्रस्थ-मत की प्रतिष्ठा हुई, वह सूफ़ियों और क़व्वालों द्वारा सारे देश में फैल गया।

इन्द्रप्रस्थ-मत का प्रचार और प्रसार

"मुसलमान आक्रमणकारियों ने बलात् धर्म-परिवर्तन की नीति अपनायी, अतः अनेक विद्याओं के विद्वान् ब्राह्मणों ने अपने वैदुष्य को छिपाया और बलात् धर्म-परिवर्तन से बचने के लिए अपनी पुस्तकों को भूमिस्थ कर दिया अथवा जला दिया। 1300 ई. एवं 1400 ई. के मध्य में संगीत का कोई ग्रन्थ नहीं लिखा गया। सम्प्रदाय-विच्छेद के कारण पन्द्रहवीं शती ई. के ग्रन्थकार उन ग्रन्थों को समझने में असमर्थ रहे, जो 1300 ई. से पूर्व लिखे गये थे। अतः पन्द्रहवीं शती ई. के विद्वान् नये मार्ग खोजने और नवीन सिद्धान्तों के प्रतिपादन में संलग्न हो गये।"[7]

यह वक्तव्य सिद्ध करता है कि पन्द्रहवीं शती ई. के रामामात्य-जैसे आचार्य प्राचीन-ग्राम-मूर्च्छना-पद्धति के अनुसार लिखे हुए संगीत-रत्नाकर को समझने में सर्वथा असमर्थ थे और वे जिस मेल-सिद्धान्त का आश्रय लेकर चले थे, वह सर्वथा नवीन था।

एक अन्य दाक्षिणात्य विद्वान् टी. आर. श्रीनिवास आयंगर ने ठीक ही कहा है कि रामामात्य, सोमनाथ और वेंकटमखी ने जिन स्वरों को 'शुद्ध' कहा है, वे भरत और शार्ङ्गदेव के शुद्ध स्वर नहीं हैं।[8]

हमें कहना यह है कि मेल-सिद्धान्त मुसलमानों के मुक़ाम-सिद्धान्त का नामान्तर-मात्र है और कुछ नहीं, इस स्थिति की पृष्ठभूमि जानना आवश्यक है।

दक्षिण भारत के समुद्री तट पर अरबों के अनेक उपनिवेश सातवी-आठवीं शती में ही बस चुके थे। वे लोग व्यापार करते थे और उनका यातायात समुद्र के किनारे-किनारे होता था। हिन्दू राजाओं ने उन्हें विशिष्ट संरक्षण दिया था। चौदहवीं शती ई. के प्रथम दशक में जब मलिक काफ़ूर ने सुन्दर पाण्डय पर आक्रमण किया, तब ये अरब मुसलमान सुन्दर पाण्डय की ओर से लड़े थे।

1323 ई. में वारंगल के राजा प्रताप रुद्रदेव काकतीय पर जब मलिक काफ़ूर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का आक्रमण हुआ, तब उसके कोषागार में कार्य करनेवाले दो भाई हरिहर और बुक्क हैदराबाद राज्य के रायचूर ज़िले में तुंगभद्रा के तट पर स्थित अनागोडी नामक स्थान पर चले गये और वहाँ के राजा ने उन्हें आश्रय दिया।

अनागोडी जब मुसलमानों के हाथ में आया, तब परास्त हिन्दू राजा के मन्त्री हरिहर और बुक्क भी बन्दी बनाकर दिल्ली ले जाये गये। मुसलमानों के शासन के विरुद्ध प्रजा ने विद्रोह किया। सुलतान हरिहर और बुक्क को मुक्त करने पर विवश हुआ, अनागोडी प्रदेश इन दोनों भाइयों को सौंप दिया गया और वे दिल्ली साम्राज्य के सामन्त के रूप में शासन करने लगे।

मुहम्मद तुग़लक़ के शासनकाल में केन्द्र की दुर्बलता का लाभ उठाकर शृंगेरी पीठ के शंकराचार्य माधव विद्यारण्य के आशीर्वाद से 1336 ई. में हरिहर और बुक्क ने विजयनगर साम्राज्य की स्थापना की।

इस स्वतन्त्र साम्राज्य की स्थापना से केवल ग्यारह वर्ष पश्चात् निज़ामुद्दीन चिश्ती के मुरीद और कृपापात्र तथा अमीर ख़ुसरो के परम मित्र ईरान के एक शरणार्थी राजकुमार हसन ने बहमनी साम्राज्य की स्थापना की।

विजयनगर-साम्राज्य की स्थापना से दस वर्ष पूर्व मुहम्मद तुग़लक़ ने देवगिरि को राजधानी बनाकर उसका नाम दौलताबाद रखा था। दिल्ली की प्रजा के साथ बुरहानुद्दीन ग़रीब जैसे सूफ़ी और दिल्ली नगर के सैकड़ों क़व्वाल भी देवगिरि आ गये थे। क़व्वालियाँ और ग़ज़लें दक्षिण में गूँजने लगी थीं।

के. वासुदेव शास्त्री का कथन है कि विद्यारण्यजी ने विजयनगर-साम्राज्य की स्थापना के पश्चात् उपलब्ध पचास रागों का वर्गीकरण पन्द्रह मेलों में किया।[9]

के. वासुदेव शास्त्री मेल-सिद्धान्त को विद्यारण्य का आविष्कार मानते हैं, परन्तु इन पन्द्रह मेलों में 'हेजुज्जी' मेल (स, रे॒, ग॒, म, प, ध॒, नि, स) की उपस्थिति बताती है कि 'मेल' शब्द 'मुक़ाम' शब्द का अनुवाद-मात्र है और 'हेजुज्जी' शब्द 'हिजाज़' शब्द का अपभ्रंश है।

विद्यारण्य मत के प्रतिपादक 'संगीतसार' की चर्चा 'संगीत-सुधा' के लेखक और वेंकटमखी के पिता गोविन्द दीक्षित ने की है। इस 'संगीतसार' का दर्शन तक गोविन्द दीक्षित के पूर्ववर्ती अथवा परवर्ती किसी ग्रन्थकार को आज तक नहीं हुआ, गोविन्द दीक्षित का पुत्र वेंकटमखी तक विद्यारण्य मत की कोई चर्चा नहीं करता। इस स्थिति में यह सन्देह किया जा सकता है कि 'संगीतसार' कहीं गोविन्द दीक्षित की कल्पना की ही तो प्रस्तुति नहीं है। अस्तु।

सूफ़ी और क़व्वाल विजयनगर-साम्राज्य की स्थापना से पूर्व ही विजयनगर के क्षेत्र में फैल चुके थे, क्योंकि मुस्लिम विजेता विजित प्रदेशों में तत्काल मदरसों, सूफ़ी मठों और मस्जिदों का निर्माण कर देते थे और अपनी धार्मिक सहिष्णुता के कारण हिन्दू जाति इन बातों का विरोध नहीं करती थी। मुहम्मद तुग़लक़ के साम्राज्य की सीमाएँ सुदूर दक्षिणतक विस्तृत हो चुकी थीं और देवगिरि में दिल्ली की समस्त प्रजा के बस जाने के दस वर्ष पश्चात् विजयनगर-साम्राज्य की स्थापना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हुई थी। सूफ़ियों और क़व्वालों के लिए दस वर्ष बहुत थे। दिल्ली-साम्राज्य के प्रतिनिधि मुस्लिम सूबेदारों की छत्रछाया में सूफ़ियों और क़व्वालों को दक्षिण में दूर-दूर तक फैलने का अवसर मिल चुका था। फलतः इन्द्रप्रस्थ-मत अथवा मुक़ाम-पद्धति का प्रचार और प्रसार सुदूर दक्षिण तक हो चुका था। विद्यारण्यजी ने इसी विवशता के परिणामस्वरूप मेल-पद्धति या मुक़ाम-पद्धति का आश्रय लेकर उपलब्ध पचास रागों का वर्गीकरण किया था।

विजयनगर-साम्राज्य और बहमनी-साम्राज्य में जन्मजात वैर भले ही हो, परन्तु दोनों राज्यों की प्रजा में सम्पर्क स्वाभाविक था, क्योंकि दोनों राज्यों के मध्य में कोई दीवार न खड़ी थी।

1366 ई. में बहमनी सुलतान मुहम्मदशाह प्रथम ने बुक्क को पराजित करके अपने दरबार के उन गवैयों के लिए पारिनोषिक वसूल किया, जो खुसरो की ग़ज़लें गाते थे, इन कलाकारों की संख्या तीन सौ थी। इस युद्ध में भयानक नर-संहार हुआ। क़व्वालों के लिए पारिश्रमिक विजयनगर नरेश से क्यों वसूल किया गया, इस सम्बन्ध में इतिहास मौन है। सम्भव है, इन कलाकारों को किसी ने विजयनगर में बुलाया हो और उनका पारिश्रमिक न दिया हो।[10]

1398 ई. में फ़ीरोज़शाह बहमनी के क़ाज़ी सिराज और उसके साथियों ने नर्तकी के वेश में जाकर शिविर में हरिहर द्वितीय के युवराज को रिझाया और उसका वध कर दिया।[11] इसका अर्थ यह है कि विजयनगर में मुसलमानों का गाना, बजाना और नाचना लोकप्रिय हो चुका था।

1406 ई. में देवराय प्रथम को फ़ीरोज़ बहमनी ने पराजित करके उसकी पुत्री का पाणिग्रहण किया। इस अवसर पर दोनों राज्यों में कला का आदान-प्रदान हुआ।[12]

बहमनी सुलतान अलाउद्दीन द्वितीय से हारकर देवराय द्वितीय ने उसकी सेवा में संगीत-नृत्य-निपुण दो सौ दासियाँ भी भेजी थीं।[13]

1442 ई. में देवराय ने अपने यहाँ नौकरी करनेवाले मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए उन्हें जागीरें दीं, विजयनगर में एक मस्जिद बनवायी और आदेश दिया कि कोई व्यक्ति मुसलमानों के आचरण में बाधा न दे। उसने अपने सभागार में राजसिंहासन के समक्ष एक ऊँचे और बहुमूल्य पीठ पर 'क़ुरान शरीफ़' रखने का आदेश दिया, जिससे कि मुसलमान अपनी धार्मिक मर्यादा का उल्लंघन किये बिना राजा को अभिवादन कर सकें। देवराय ने हिन्दुओं को प्रेरित किया कि वे धनुष चलाने और अनुशासन में रहने की शैली मुसलमानों से सीखें। फलतः साठ हज़ार हिन्दू और दो हज़ार मुसलमान धनुर्विद्या में निपुण हो गये।[14]

देवराय द्वितीय की राजसभा में फ़ारसी समझने और बोलनेवाले दुभाषिये थे। फ़ारस का राजदूत अब्दुर्रज्ज़ाक उसके दरबार में 1442 ई. से एप्रिल 1443 ई. के प्रारम्भ तक रहा।

इस स्थिति में संगीत-रत्नाकर के प्रसिद्ध टीकाकार कल्लिनाथ अपने युग के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत के विषय में कह रहे थे—

(क) मेरे युग में प्रत्येक राग 'स' से आरम्भ किया जाता है। (अर्थात् मूर्च्छना-पद्धति लुप्त हो गयी है और मेल-सिद्धान्त चल रहा है।)

(ख) षड्ज का संवादी पंचम ही प्रयोग में रह गया है। (अर्थात् मध्यम-ग्राम की समझ-बूझ ग़ायब हो गयी है।)

(ग) श्रीराग में ऋषभ, गान्धार, धैवत और निषाद अपने मूल स्थान से एक-एक श्रुति चढ़ गये हैं (अर्थात् काफ़ी ठाठ आ गया है।)

वास्तव में काफ़ी ठाठ मध्यम-ग्राम की ऋषभादि साधारणी मूर्च्छना है। न जाने कल्लिनाथ का ध्यान इस तथ्य की ओर क्यों नहीं गया।

(घ) क्रियांग रामक्री में मध्यम दो श्रुति चढ गया है (प्रसन्नता की बात है कि कल्लिनाथ इस दो श्रुति चढ़े मध्यम को न तो त्रिश्रुतिक मान रहे हैं, और न पंचम का विकार। सोलहवीं शती के दाक्षिणात्य पण्डित 'म' को ही मध्यमग्रामीय त्रिश्रुतिक पंचम समझ बैठे हैं।)

(ङ) नट्ट और देवक्री जैसे रागों में ऋषभ ने अन्तर गान्धार की और धैवत ने काकली निषाद की दो श्रुतियाँ ले ली हैं। (अर्थात् 'स ग॒ ग, म, प, नि॒ नि सं' में 'ग॒' को ऋषभ और 'नि॒' को धैवत कहा जाने लगा है) अर्थात् पञ्चश्रुतिक ऋषभ और पञ्चश्रुतिक धैवत जैसी अवैदिक संज्ञाओं का जन्म हो चुका है।

(च) कर्णाट गौड में षड्ज के स्थान पर निषाद अंश और ग्रह हो गया है। (अर्थात् कर्णाट गौड का ठाठ बदल गया है।)

(छ) हिन्दोल में ऋषभ-धैवत के लोप के स्थान पर ऋषभ-पंचम का लोप होने लगा है। (अर्थात् राग ही बदल गया है।)

(ज) कहीं-कहीं षाडव और औडुव रागों में भी लोप-स्वर का प्रयोग किया जाने लगा है।

(झ) कहीं-कहीं जन्य और जनक के मेलन (ठाठ) में भी भेद होने लगा है।

(ञ) राग के अनुसार रस के विनियोग में भी अनियम देखा जाता है।

कल्लिनाथ का यह वक्तव्य सिद्ध करता है कि दक्षिण भारत में लोगों का काम मुक़ाम-सिद्धान्त या मेल-सिद्धान्त से चल रहा था, ग्राम-मूर्च्छना-पद्धति को समझने-वाले केवल कल्लिनाथ रह गये थे। अन्य व्यक्तियों को 'रत्नाकर' के समझने की आवश्यकता ही न थी। इसी स्थिति के कारण संगीत-रत्नाकर की टीका के लिए देवराय ने कल्लिनाथ से आग्रह किया।

सन्दर्भ

1. खिलजी कालीन भारत, पृ. 179
2. मध्ययुग का इतिहास, पृ. 102

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

3. मानसोल्लास, खण्ड 3, पृ. 13, श्लोक, 132
4. खिलजी कालीन भारत, पृ. 178
5. संगीत चिन्तामणि, पृ. 268
6. वही, पृ. 318
7. दी साइंस ऑव म्यूज़िक, लेखक स्व. के. वासुदेव शास्त्री, पृ. 21
8. संग्रह-चूड़ामणि, भूमिका, पृ. 12-13
9. संगीतशास्त्र, पृ. 141
10. ए फॉरगॉट्न, एम्पायर, पृ. 33-39
11. वही, पृ. 53-54
12. वही, पृ. 60-61
13. वही, पृ. 72
14. ए फॉरगॉट्न एम्पायर, पृ. 75-76

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुकाम-पद्धति के संगीत-ग्रन्थ

लोचनकृत राग-तरंगिणी

लोचन विहार के रहनेवाले थे और उनका 'मुखारी ठाठ' आधुनिक आसावरी-ठाठ जैसा था, यह तथ्य सिद्ध करता है कि वे उस युग के ग्रन्थकार थे, जिस युग में 'स, रे. रे, म, प ध, ध सं' को मुखारी कहने की परम्परा आरम्भ नहीं हुई थी, अर्थात् उनका काल रामामात्य से पूर्व है।

उनका 'भैरवी' संस्थान आधुनिक काफ़ी ठाठ के सदृश है। यह स्थिति भी उन्हें अन्य ग्रन्थकारों की अपेक्षा पूर्ववर्ती सिद्ध करती है। वे अपनी भैरवी अर्थात् आधुनिक काफ़ी के स्वरों को शुद्ध मानते हैं।

लोचन अहोवल की अपेक्षा पूर्ववर्ती हैं, क्योकि अहोबल का मुखारी दाक्षिणात्य, आचार्यों के सदृश है और लोचन इस प्रभाव से मुक्त हैं।

आधुनिक भैरव लोचन के शब्दों में 'गौरी-संस्थान' है। 'गौरी' शब्द 'गौडी' का अपभ्रंश है, जिसका अर्थ 'गौड देश से सम्बद्ध' होता है। गौड देश पर मुसलमानों का अधिकार क़ुतुबुद्दीन ऐबक (रा. का. 1206-10 ई.) में ही हो गया था और वहाँ सूफ़ियों के मठों की स्थापना हो गयी थी। निज़ामुद्दीन चिश्ती के मुरीद और ख़लीफ़ा अखी सिराज अहमद ने बंगाल, बिहार और आसाम को अपना कार्य-क्षेत्र बनाकर वहाँ अनेक सूफ़ी ख़ानक़ाहों की स्थापना कर दी थी, जिनमें क़व्वालों की उपस्थिति स्वाभाविक थी। यह परम्परा चिश्तियों की उस परम्परा से भिन्न थी, जिसका प्रसार दक्षिण में शेख़ बुरहानुद्दीन ग़रीब और बन्दानवाज़ गेसूदराज़ के द्वारा हुआ था।

लोचन ने स्वरों से पूर्व 'कोमल' और 'तीव्र' विशेषणों का प्रयोग किया है। इन विशेषणों का प्रयोग करनेवाले यह सर्वप्रथम आचार्य हैं।

लोचन के समय तक सम्भवतः 'सर्वरागमेला' वीणा का निर्माण नहीं हुआ था, जिसमें बारहों स्वरों के लिए बारह अचल पर्दे होते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लोचन ने 'ठाठ' के लिए 'संस्थान' शब्द का 'प्रयोग' किया है। इस शब्द का प्रयोग रामामात्य, पुण्डरीक और श्रीकण्ठ ने नहीं किया। "मेलन' शब्द का प्रयोग कल्लिनाथ ने भी किया है, अतः लोचन कल्लिनाथ की अपेक्षा भी पूर्ववर्ती है, क्योंकि 'संस्थान' शब्द 'मुक़ाम' का ठीक-ठीक अनुवाद है।

लोचन की राग-तरंगिणी में हिन्दुस्तानी ठाठ भैरव, काफ़ी, आसावरी, पूर्वी विलावल, भैरवी खमाज और कल्याण मिल जाते हैं, मारवा और तोड़ी नहीं मिलते।[1]

लोचन ने रागों का समय भी बताया है और संकीर्ण रागों पर एक अध्याय लिखा है।

अहोवलकृत संगीत-पारिजात

अहोवल के 'संगीत पारिजात' का अनुवाद औरंगज़ेब के वेतनभोगी कर्मचारी मिर्ज़ा रौशन ज़मीर ने किया था, जिसका स्वर्गवास 1666 ई. में हुआ। यदि इस ग्रन्थ का रचनाकाल अनुवाद से सौ वर्ष पूर्व माना जाये, तो वह 1560 ई. और 1566 ई. के बीच में या उससे पूर्व पड़ता है।[2]

अहोवल ने अपने शुद्ध स्वर काफ़ी ठाठ के माने हैं और उस ठाठ को शुद्ध मेल कहा है, इससे यह सिद्ध है कि स्वरों की शुद्धता के विषय में वे लोचन के अनुवर्ती हैं। परन्तु वे अपने मुखारी मेल के स्वर रामामात्य के सदृश मानते हैं, अतः उन्हें दाक्षिणात्य आचार्यों से अपरिचित नहीं कहा जा सकता।

उनके द्वारा स्वीकृत मेलों में हमारे भैरव, काफ़ी, आसावरी, पूर्वी विलावल, खमाज और कल्याण ठाठ दिखायी देते हैं, परन्तु भैरवी, तोड़ी और मारवा वहाँ नहीं हैं।

वे ठाठ के लिए मेल शब्द का ही प्रयोग करते हैं।

वीणा में तार की लम्बाई पर स्वर-स्थान निश्चित करने का कार्य स्वरज्ञान-विहीन व्यक्तियों के लिए अहोवल ने किया है, इसीलिए कुछ आधुनिक ठाठवादी उनके परम भक्त हैं।

'राजधानी' नामक एक वीणा का वर्णन भी अहोवल ने किया है और 'राजधानी' नामक एक राग भी उनके वर्णन का विषय बना है, जिसका ठाठ आधुनिक 'कल्याण' है। वे किसी ऐसे राज्य की राजधानी में रहते थे जहाँ की भाषा में पटह को 'ढोलक' कहा जाता था।

रबाव और सुरसागर नामक तन्त्री-वाद्य भी उनके द्वारा वर्णन का विषय बना है। जलयन्त्र (जलतरंग), सुनादी (शहनाई) और चंगु (चंग) के लक्षण भी उन्होंने दिये हैं।

'ध्रुवपद' की भाषा उन्होंने उत्तर भारतीय बतायी है, अर्थात् उनका ग्रन्थ मानसिंह तोमर (रा. का. 1486-1516 ई.) के पश्चात् लिखा गया है।

खमाज ठाठ अहोवल के शब्दों में श्रीरागमेल है, 'रागमंजरी' में पुण्डरीक ने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी खमाज ठाठ को श्रीरागमेल ही कहा है। अन्य कोई आचार्य इस स्वरावलि को श्रीरागमेल नहीं कहता।

वर्तमान पूर्वी ठाठ अहोबल के शब्दों में 'वराटी' है, दाक्षिणात्य आचार्य इस ठाठ को शुद्ध रामक्रिया अथवा शुद्ध रामक्री कहते हैं।

अहोवल वैष्णव थे, सम्भव है वे वृन्दावन आये हों और उन्होंने अकबर की राजधानी आगरा का दर्शन किया हो। राजधानी वीणा और राजधानी राग का वर्णन ऐसी व्यंजना करता है।

मुक़ाम-पद्धति का सर्वप्रथम उपलब्ध दाक्षिणात्य ग्रन्थ स्वरमेल-कलानिधि

पन्द्रहवीं शती ई. के उत्तरार्द्ध में विजयनगर ने प्रतापी शासक उत्पन्न न किये। शाल्व जातीय सेनापति नरेश नायक ने इम्मडि नरसिंह का वध करके एक नवीन राजवंश की स्थापना की। कृष्णदेव राय (रा. का. 1509-1530 ई.) इस राजवंश का प्रतापी शाशक हुआ, जो इतिहास में अपने गुणों के कारण अमर है।

व्रजभाषा-ध्रुवपद का आविष्कार करनेवाले ग्वालियर-नरेश मानसिंह तोमर कृष्णदेव राय के समकालीन थे। कृष्णदेव राय के राज्य-काल में ही दिल्ली के इब्राहीम लोदी को पराजित करके बाबर ने 1526 ई. में मुग़ल-साम्राज्य की नींव डाली और इसी वर्ष दक्षिण का बहमनी साम्राज्य बिखर गया, परिणामतः उसके स्थान पर बरार के इमादशाही, बीजापुर के आदिलशाही, अहमदनगर के निज़ामशाही, गोलकुण्डा के कुतुबशाही और बीदर के बीदरशाही राजवंश की स्थापना हुई।

कृष्णदेव राय के सभापण्डित लक्ष्मीनारायण ने 'संगीतसूर्योदय' की रचना की, जिसके प्रबन्धाध्याय में 'ग़ज़ल' और 'क़ौल' जैसे प्रबन्धों की चर्चा भी है, जो पिछली कई शताब्दियों से विजयनगर में गूँज रहे थे।

स्वरमेल-कलानिधि के लेखक 'राम' (राम + अमात्य = रामामात्य) कृष्णदेव राय के दामाद थे। रामामात्य के पिता शाल्व तिम्म राज्य के महामन्त्री थे।

कृष्णदेव राय की मृत्यु के पश्चात् बारह वर्ष तक उसका भाई विजयनगर का अयोग्य शासक हुआ। इसके शासनकाल में विजयनगर-साम्राज्य की प्रतिष्ठा गिरी। इसकी मृत्यु 1542 ई. के पश्चात् सदाशिव को राजसिंहासन पर बिठाया गया।

सदाशिव नाममात्र का शासक था, वास्तविक शासन स्वर्गीय महामन्त्री शाल्व तिम्म के पुत्र शाल्व राम (रामामात्य) के हाथ में था।

'स्वरमेल-कलानिधि' के प्रत्येक अध्याय के अन्त में भी रामामात्य को तिम्म अमात्य का पुत्र कहा गया है।

1542 ई. में दिल्ली पर शेरशाह सूरी, गुजरात पर महमूद बींगड़ा, गोल-कुण्डा पर सुलतान कुली क़ुतुबशाह, बीजापुर पर इब्राहीम आदिलशाह प्रथम और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अहमदनगर पर बुरहान निज़ामशाह का शासन था।

इस राजनीतिक परिस्थिति को समझे बिना विजयनगर पर मुस्लिम प्रभाव जानना कठिन है।

रामामात्य ने इन पड़ोसी मुस्लिम राज्यों के साथ यथावसर सन्धि और विग्रह का आचरण किया।

रामामात्य ने 1543 ई. में बुरहान निज़ामशाह के साथ सन्धि की। इब्राहीम क़ुली कुतुबशाह के साथ इनकी सन्धि 1551 ई. में हुई। बीजापुर के अली आदिलशाह को रामामात्य की धर्मपत्नी ने अपना धर्मपुत्र घोषित करके विजयनगर में उसका स्वागत किया था।

हुसेन निज़ामशाह के तो हाथों का चुम्बन तक एक बार रामामात्य ने लिया था। यह स्थिति बताती है कि उस युग के रामामात्य जैसे दाक्षिणात्य ब्राह्मणों तक पर मुस्लिम आचार-विचार का कितना प्रभाव हो चुका था।

1565 ई. में दक्षिण के मुस्लिम नरेशों ने संघबद्ध होकर हुसेन निज़ामशाह के ही नेतृत्व में रामामात्य के विरुद्ध युद्ध किया। मुसलमानों ने तोपों में गोले की जगह तांबे के सिक्कों से भरे थैले छोड़े, जिनकी मार ने क्षणमात्र में विजयनगर के पाँच हज़ार सैनिकों की हत्या कर दी। इस विलक्षण अस्त्र की मार से विजयनगर के सैनिक हतोत्साह हो गये और हुसेन निज़ामशाह ने अपने हाथों से रामामात्य का वध किया। इस समय रामामात्य की आयु सत्तानवे वर्ष थी।

रामामात्य ने 1550 ई. में 'स्वरमेल-कलानिधि' की रचना की। यह मेल-सिद्धान्त का सर्वप्रथम उपलब्ध दाक्षिणात्य ग्रन्थ है।

स्वरमेल-कलानिधि अनेक भ्रान्तियों का जनक

प्रो. रामकृष्ण कवि के अनुसार रामामात्य कल्लिनाथ के दौहित्र (धेवते) थे। यदि यह सत्य है, तो भी रामामात्य को ग्राम-मूर्च्छना-पद्धति की शिक्षा नहीं थी। न तो वे 'ग्राम' का लक्षण समझते थे और न उन्हें स्वरसंज्ञाओं के मर्म का ज्ञान था। अपने ग्रन्थ में उन्होंने व्यर्थ ही 'शार्ङ्गदेव' और 'रत्नाकर' शब्दों का प्रयोग करके इस भ्रान्ति की सृष्टि की कि वे सम्भवतः शार्ङ्गदेव की परम्परा के ही अनुयायी हैं।

रामामात्य के युग में सर्वराग मेला नामक ऐसी वीणाओं का निर्माण हो चुका था, जिनमें एक 'स्थान' (मन्द्र, मध्य या तार) के अन्तर्गत बारह-बारह स्वरों का बोध करानेवाली अचल सारिकाएँ थीं। उन सारिकाओं से उत्पन्न होनेवाली ध्वनियों को रामामात्य ने रत्नाकरोक्त नाम दे दिये। पृष्ठ 47 पर दी गयी सारणी विचारणीय है।

स्वरों का केशाग्र अन्तर चढ़ना या उतरना प्रयोग की सूक्ष्मता का परिणाम होता है, इसीलिए साधारण गान्धार, च्युत मध्यम, कैशिक निषाद और च्युत षड्ज स्वरों की एक भङ्गिमा मात्र है, स्थिर ध्वनियाँ नहीं। यही कारण है कि भरत,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वरों की उत्तर भारतीय संज्ञा	मुक़ाम के अनुसार संज्ञा	रामामात्य की संज्ञा
1. षड्ज	रास्त	षड्ज
2. कोमल ऋषभ	शहनवाज़	शुद्ध ऋषभ (त्रिश्रुतिक)
3. चढ़ी रिषभ	दोका	शुद्ध गान्धार
4. कोमल गान्धार	कुर्द	साधारण गान्धार
5. चढ़ी गान्धार	सीका	च्युत मध्यम गान्धार
6. कोमल मध्यम	गिरका	शुद्ध मध्यम
7. चढ़ी मध्यम	हिजाज़	च्युत पंचम मध्यम
8. पंचम	नवा	पंचम
9. कोमल धैवत	हिसार	शुद्ध धैवत (त्रिश्रुतिक)
10. चढ़ी धैवत	हुसैनी	शुद्ध निषाद
11. कोमल निषाद	अगनू	कैशिक निषाद
12. चढ़ी निषाद	नीम माहुर	च्युत षड्ज निषाद

मतङ्ग अथवा शार्ङ्गदेव ने इन स्वरों से युक्त मूर्च्छनाएँ नहीं मानीं।

प्रयोग की सूक्ष्मता के कारण निषाद जब एक श्रुति चढ़ जाता है, तभी षड्ज एक श्रुति उतरता है, यह स्थिति 'षड्ज साधारण' कहलाती है और केवल षड्ज-ग्राम में होती है।

इसी भाँति साधारण गान्धार और च्युत मध्यम का प्रयोग साथ-साथ होता है, यह स्थिति 'मध्यम-साधारण' कहलाती है और केवल मध्यम ग्राम में होती है।

इस वास्तविकता को न समझनेवाले लोगों को कल्लिनाथ ने असम्प्रदाय-वित् (सम्प्रदाय के रहस्य से अपरिचित) कहा है।

रामामात्य ने स्थिर ध्वनियों को साधारण गान्धार, च्युत मध्यम, कैशिक निषाद और च्युत षड्ज निषाद कहकर इस तथ्य को निर्भ्रान्त रूप में प्रमाणित किया है कि वे रत्नाकर की परम्परा से सर्वथा अपरिचित थे।

जिस चढ़े हुए मध्यम को कल्लिनाथ मध्यम का विकार मानते हैं, उसे पंचम का विकार मानकर रामामात्य ने अपने दयनीय अज्ञान का परिचय दिया है।

भरत के गान्धार (आधुनिक अतिकोमल गान्धार) और चतुःश्रुतिक पंचम में प्रलय-पर्यन्त भी संवाद सम्भव नहीं, परन्तु रामामात्य के तथाकथित शुद्ध (!) गान्धार और पंचम में प्रत्यक्षरूपेण संवाद सिद्ध है, अतः सिद्ध है कि रामामात्य का शुद्ध गान्धार उनका अपना शुद्ध गान्धार है, भरत या शार्ङ्गदेव के गान्धार का कोई सम्बन्ध इस तथाकथित गान्धार से नहीं।

'मं' को रामामात्य ने अकारण ही च्युतपंचम मान लिया, भरत के मध्यम ग्रामीण च्युतपंचम से 'मं' का कोई सम्बन्ध नहीं।

'मं' को च्युतपंचम मानकर उसके संवादी 'रे' को शुद्ध ऋषभ और उसके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संवादी 'ध' को शुद्ध धैवत मान डाला गया। 'रे' से बादवाले 'रे' को शुद्ध गान्धार और 'ध' के पश्चाद्वर्ती 'ध' को शुद्ध निषाद (!) कह डाला गया।

'मं' को मध्यमग्रामीय च्युतपंचम मानकर 'स, रे, रे, म, प, ध, ध' को भरत का शुद्ध सप्तक मान लेनेवाले दाक्षिणात्य अब भी सुलभ हैं।[3]

भगवान् की बड़ी कृपा है कि कुछ बुद्धिमान् दाक्षिणात्यों की समझ में आ गया है कि दाक्षिणात्यों का मुखारी मेल भरत का शुद्ध स्वर-सप्तक नहीं है।[4]

बड़ी मनोरंजक बात यह है कि इतना उत्पात करने पर भी रामामात्य कहते हैं कि समस्त देशी राग 'षड्जग्राम' से उत्पन्न हुए हैं।[5] सभी आचार्य यह मानते आये थे कि 'देशी रागों' में श्रुति, स्वर, ग्राम, जाति इत्यादि का नियम नहीं होता, परन्तु 'षड्जग्राम' का लक्षण तक न समझनेवाले रामामात्य ने सभी देशी रागों को षड्जग्राम से उत्पन्न कह डाला। पश्चाद्वर्ती आचार्यों को इसी दिशा में भ्रान्त करने का उत्तरदायित्व रामामात्य पर है।

शार्ङ्गदेव पर अत्याचार की पराकाष्ठा तो तब हुई है, जब रामामात्य ने 'हिजूजी' को ग्रामराग कहकर उसे शार्ङ्गदेव-सम्मत बता दिया है। ब्रह्मा को भी संगीत-रत्नाकर में 'हेजूजी' न मिलेगा।

रामामात्य ने गीत, प्रबन्ध और आलाप के योग्य बीस राग गिनाये हैं और इन्हें 'उत्तम' कहा है। लोक में जिनका व्यवहार अधिक नहीं होता, वे राग रामामात्य की दृष्टि में 'मध्यम' कोटि के हैं। जो राग प्रबन्ध के लिए अयोग्य हैं, वे रामामात्य के अनुसार अधम हैं।

संकीर्ण रागों को रामामात्य ने पामरभ्रामक (नीचों को भ्रम में डालनेवाला) और त्याज्य कहा है। मुसलमानों के द्वारा आविष्कृत ऐसे संकीर्ण रागों को रामामात्य ने पामरभ्रामक कहा है, जो उनके द्वारा स्वीकृत बीस मेलों के चौखटे में फिट न होते थे।

आज भी दाक्षिणात्य बन्धु 'लक्ष्मी तोड़ी', रामपुर-परम्परा की देसी तोड़ी, मियाँ की मलार इत्यादि रागों की सरगम नहीं कर सकते।

यदि रामामात्य स्वरमेल-कलानिधि पर रत्नाकर की मुद्रा लगाने के चक्कर में न पड़ते, तो संगीत-जगत् का हित होता।

पुण्डरीक के ग्रन्थ

1562 ई. में अकबर ने अपने दूधभाई आदम खाँ का वध कराया, गोंडवाना जीता, अजमेर में मुईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह की ज़ियारत की, जोधाबाई का पाणिग्रहण किया, जोधाबाई के भतीजे कुँवर मानसिंह को अपने दरबार में स्थान दिया, खानदेश को करद राज्य बना लिया और तानसेन को रीवाँ से बुला लिया। इसी वर्ष सम्भवतः पुण्डरीक ने कुँवर मानसिंह का आश्रय लिया।

आगरा आने से पूर्व पुण्डरीक खानदेश के अधिपति बुरहान खाँ फ़ारूक़ी के आश्रय में रहकर 'षड्रागचन्द्रोदय' नामक ग्रन्थ की रचना कर चुके थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

1562 ई. में गोलकुण्डा पर अब्दुल्लाह कुतुवशाह, बीजापुर पर अली आदिलशाह प्रथम, अहमदनगर पर हुसेन निज़ामशाह, विजयनगर पर महामन्त्री रामामात्य शासन कर रहे थे। इस वर्ष से प्रायः बारह वर्ष पूर्व रामामात्य का ग्रन्थ स्वरमेल-कलानिधि लिखा गया था। यह सम्भव नहीं कि परम प्रतापी रामामात्य से पुण्डरीक प्रभावित न हुए हों। 'स्वरमेल-कलानिधि' और पुण्डरीक की कृति 'षड्रागचन्द्रोदय' में मुखारी, मालव गौडश्री, शुद्ध रामश्री, देशाक्षी कन्नडगौल या कर्णाट गौड, शुद्ध नाट अहीरी या आभीरी, नादरामश्री, शुद्ध वराली या शुद्ध वराटी, केदार गौड या केदार, एक जैसे हैं।

हाँ, रामामात्य की वसन्त भैरवी (स, रे, ग, म, प, ध, नि, सं)को पुण्डरीक 'हिजेज्ज' कहते हैं और रामामात्य का हेजुज्जी और मालवगौल सदृश है।

'रागमाला' की रचना पुण्डरीक ने कुँवर मानसिंह के आश्रय में रहकर की। 'षड्रागचन्द्रोदय' में हमारे आसावरी ठाठ की चर्चा नहीं है, परन्तु 'रागमाला' में उसे हिन्दोल कहा गया है। षड्रागचन्द्रोदय में हमारा खमाज ठाठ भी नहीं, परन्तु 'रागमाला' में वह श्रीरागमेल नाम से है।

पुण्डरीक का 'कल्याणमेल' 'स, रे, ग, मं, प, ध, नि, सं' है और कल्याण ठाठ का आधुनिक रूप उनके ग्रन्थों में दृष्टिगोचर नहीं होता। उत्तर भारतीय संगीत में जो कल्याण ठाठ आज 'प्रथम' ठाठ कहलाता है, पुण्डरीक के ग्रन्थों में उसका अभाव अनेक प्रश्न उत्पन्न करता है। श्रीकण्ठ और सोमनाथ तक इस ठाठ के सम्बन्ध में मौन हैं। पुण्डरीक के पूर्ववर्ती रामामात्य तक इसके सम्बन्ध में चुप हैं।

वेंकटमखी इस ठाठ को तुरुष्कप्रिय (मुसलमानों को प्यारा) तथा गीत और प्रबन्ध के लिए अयोग्य बताते हैं; परन्तु अपने प्रमुख मेलों में इसकी गणना करते हैं।

पुण्डरीक ने अपने 'रागमाला' नामक ग्रन्थ में छः रागों, उनमें से प्रत्येक की छः-छः पत्नियों और पाँच-पाँच पुत्रों का वर्णन भी किया है, तथा रागों के गाने का समय और रागों के देवात्मक रूप या ध्यान भी दिये हैं।

षड्जग्राम के लक्षण से ये भी औरों के समान अपरिचित थे और यही समझते थे कि उनके युग में सब राग षड्जग्राम का आश्रय लेकर ही गाये जाते हैं।

'परद' नामक पारसीक (फ़ारस देश) रागों में उन्होंने रहायी, निशावर, माहुर, जंगूलक, आहंग, बारा, सूहा, इराक़, हुसेनी, मुसलीक, यमन, सरपर्द, बाखरेज, हिजेज और मुश्क की चर्चा करते हुए उन्हें क्रमशः देवगान्धार, कानड़ा, सारंग, बंगाल, देशी, मल्हार, केदार, धनासी, जिज्जावती, मालव, कल्याण विलावल, देशिकार, आसावरी और देवगिरि से मिलता-जुलता बताया है।

अकबरी दरबार में मशहद और हिरात के अनेक गुणी थे, उनसे पुण्डरीक ने ये पारसीक राग सुने होंगे, परन्तु उन्होंने जिन रागों को अपनी समझ में भारतीय समझकर पारसीक रागों से उनकी तुलना की है, उनमें से कुछ स्वतः अभारतीय हैं, जो पूर्ववर्ती कव्वालों के द्वारा भारत में प्रचलित किये जा चुके थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस तुलनात्मक वर्णन से इतना अवश्य ज्ञात होता है कि उनके द्वारा सुने हुए 'यमन' में लगनेवाले 'स, रे, ग, मं, प, ध, नि, सं' ।

श्रीकण्ठकृत रसकौमुदी

नवानगर के जाम नरेश शत्रुशल्य (रा. का. 1559-1608 ई.) के आश्रय में रहकर 1575 ई. में पुण्डरीक के शिष्य श्रीकण्ठ ने रसकौमुदी की रचना की। 1573 ई. में अकबर ने गुजरात पर अधिकार कर लिया, अतः शत्रुशल्य मुगल सूवेदारों के अधीन रहे होंगे।

लगता है कि इन्होंने गुरु-शिष्य-परम्परा के अनुसार पुण्डरीक से शिक्षा प्राप्त की और नवानगर नरेश के आश्रय में चले गये। पुण्डरीक का नाम इन्होंने 'रस-कौमुदी' में गुरु-स्थान पर लिया है।

श्रीकण्ठ ने भी चतुर शिल्पी के द्वारा बनायी हुई वीणा पर तारों को मिलाने की विधि बतायी है और उनका कथन है कि गुरु से पायी हुई शिक्षा के अनुसार मैं यह प्रकरण लिख रहा हूँ। यह मेरी अपनी कल्पना नहीं है। इस विधान में इन्होंने किसी ग्रन्थ का उद्धरण नहीं दिया है, इससे प्रतीत होता है कि यद्यपि यह अपनी गुरु-परम्परा के अनुसार मुखारी मेल को शुद्ध स्वरावलि मानते थे, तथापि इन्हें किसी ऐसे ग्रन्थ का दर्शन नहीं हुआ था, जिसमें शुद्धमेला मध्यमेला वीणाओं पर तारों को मिलाने की विधि बतायी गयी हो।

पुण्डरीक और श्रीकण्ठ के मुखारी, मालवगौडश्री, देशाक्षी, शुद्धनाट केदार, सारंग और कल्याण सदृश हैं।

पुण्डरीक का हिन्दोल, श्रीकण्ठ का वसन्तमेल और पुण्डरीक का रागमंजरी-प्रोक्त श्रीरागमेल, श्रीकण्ठ का कर्णाट गौड है। पुण्डरीक के कर्णाट गौड की स्वरावलि 'स ग ग म प ध नि सं' है और श्रीकण्ठ का कर्णाट गौड हमारा खमाज ठाठ है।

श्रीकण्ठ के द्वारा स्वीकृत मेलों में हमारे भैरव, काफ़ी, विलावल, आसावरी और खमाज के दर्शन होते हैं, पूरवी, भैरवी, तोड़ी और मारवा के दर्शन उनमें नहीं होते।

आन्ध्रदेशीय सोमनाथकृत राग-विवोध

आन्ध्रदेशीय सोमनाथ ने अपना ग्रन्थ राग-विवोध 18 सितम्बर 1609 ई. को पूर्ण किया।

इस समय अकबर की मृत्यु को केवल पाँच वर्ष बीते थे और जहाँगीर के राज्य-काल का चौथा वर्ष था। गोलकुण्डा पर मुहम्मद कुली कुतुवशाह, बीजापुर पर संगीत का मर्मज्ञ विद्वान् एवं वीणावादक इब्राहीम द्वितीय, अहमदनगर पर बुरहान सालिस तथा वेनुकोंडा पर वेंकट प्रथम शासन कर रहा था।

मुसलमानों की दक्खिनी हिन्दी से सोमनाथ भली भाँति परिचित थे और उसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'भाषा' कहते थे। उन्होंने 'भाषा' में प्रयुक्त होनेवाले शब्द थाट, कहो (ककुभ), चुम्बकी (नाभि), झारा (जिह्वाली), पट्टी, सारी, वज्रथाट, हुसेनी (तुरुष्कतोड़ी), सिन्धोड़ा (सैन्धवी), मेवाड़, हिजेज, मारू (मारविका), इराख़ (तुरुष्कतोड़ी) और सोरठी गिनाये हैं।

प्राचीन शास्त्रों की मर्मज्ञता का दम्भ उन्होंने नहीं किया है। वे कहते हैं कि मैं कहीं-कहीं प्राचीनों के वचनों का सार ले रहा हूँ, क्योंकि प्राचीन ग्रन्थों (मूर्च्छना पद्धति के ग्रन्थों) का पूरा आशय समझ में नहीं आता।[6]

सोमनाथ की दृष्टि में यदि स्वर एक-आध श्रुति ऊँचा-नीचा लग जाये तो कोई दोष नहीं है।[7]

सोमनाथ ने 'परदराग' (फ़ारसी राग), हुसेनी, जुलुफ़, मुसली, उज्ज्वल नवरोज, वाखरेज, हिजेज, पंजगिरह (पंचग्रह) पुष्क, सरपर्द और इराख़ गिनाये हैं और क्रमशः तोड़ी, भैरव, रामक्रिया, आसावरी, विहङ्गड, देशकार, सैन्धवी, कल्याण-यमन, देवक्री, वेलावली और कर्णाट को इन ईरानी रागों का समच्छाय कहा है।[8]

सोमनाथ ने स्वरों की चढ़ी हुई अवस्थाओं को तीव्र, तीव्रतर और तीव्रतम कहा है।

इन्होंने रागों का समय निर्धारित किया है और प्रभात, प्रातःकाल, संगव (प्रातः और मध्याह्न के मध्य का भाग), मध्याह्न, अपराह्ण, सायाह्न, प्रदोष और रात्रि में गाये जानेवाले राग अलग-अलग गिनाये हैं और कुछ राग सर्वदा गेय बताये हैं।[9]

कुछ रागों के ध्यान भी इन्होंने दिये हैं। ये ध्यान इनके शब्दों में रागों के देवतामय रूप हैं।[10]

मध्यम और निषाद में संवाद इन्होंने माना है, जो कि प्रत्यक्ष है, यह संवाद कल्लिनाथ ने भी माना है,[11] जो स्वयंभू और प्रत्यक्ष है। अन्य दाक्षिणात्य ग्रन्थकार इस संवाद की उपेक्षा करते आये हैं।

'स, रे, रे, म, प, ध, ध, सं' इनकी दृष्टि में भी शुद्ध स्वर हैं,[12] इस सम्बन्ध में इन्होंने आँख बन्द करके रामामात्य का अनुकरण किया है। 'मुखारी' शब्द इनकी दृष्टि में स्त्रीलिंग है।[13] मुखारी शब्द की व्युत्पत्ति भी इन्होंने कर डाली है।[14]

मेल, थाट और संस्थान (मुक़ाम) इनकी दृष्टि में परस्पर पर्यायवाची हैं।[15]

राग-रागिनी-सम्प्रदाय की चर्चा करते हुए इन्होंने रागार्णव मत का उल्लेख किया है। श्री, वसन्त, पञ्चम, भैरव, मेघ और नटनारायण इन छः रागों और इनमें से प्रत्येक की छः-छः रागिनियों की भी चर्चा की है।[16]

शुद्धमेला और मध्यमेला वीणा की चर्चा करते हुए इन दोनों के दो-दो भेद 'अखिल राग मेला' और 'एकराग मेला' बताये हैं।[17] तारों के मिलाने का ढंग रामामात्य जैसा है।

इनके द्वारा स्वीकृत मेलों में हिन्दुस्तानी संगीत के भैरव, काफ़ी, पूर्वी, बिला-वल, भैरवी, खमाज, तोड़ी ठाठ तो मिलते हैं, परन्तु कल्याण, मारवा और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आसावरी ठाठ का दर्शन नहीं होता।

इनके कल्याण में 'स, रे, ग, मं प, ध, नि, सं' हैं, षड्रागचन्द्रोदय में पुण्डरीक और 'रसकौमुदी' में श्रीकण्ठ ने भी इसी स्वरावलि को 'कल्याण' कहा है। रामामात्य ने हिन्दुस्तानी कल्याण ठाठ, भैरवी ठाठ, तोड़ी ठाठ, मारवा ठाठ की चर्चा नहीं की है।

वैसे 'कल्याण यमन' की चर्चा सोमनाथ करते हैं और इसे परदराग पंचग्रह का समच्छाय बताते हैं।

रागों के समय का निर्धारण और रागों का ध्यान इन पर उत्तर भारतीय प्रभाव सिद्ध करता है। रागों के तीन भेद उत्तम, मध्यम और अधम इन्होंने भी दिये हैं।

वेंकटमखी रचित चतुर्दण्डी-प्रकाशिका

बहत्तर मेलकर्ताओं के आविष्कारक वेंकटमखी ने तंजौर नरेश विजयराघव के अनुरोध से 1660 ई. में चतुर्दण्डी-प्रकाशिका की रचना की।

इस समय औरंगज़ेब के शासन का आरम्भ हुआ था। गोलकुण्डा पर अब्दुल्ला क़ुतुबशाह, बीजापुर पर अली आदिलशाह (द्वितीय) और अहमदनगर पर हुसेन निज़ामशाह शासन कर रहे थे।

तंजौर के बग़ल में ही पुलीकट और मद्रास में 'डच', मद्रास में अंग्रेज़ और पाण्डिचेरी में फ्रांसीसी डटे हुए थे।

वेंकटमखी पर अनेक देशीय प्रभाव थे। उन्होंने अष्टक के दो अर्ध स्वतन्त्र मानकर अपने बहत्तर मेलकर्ताओं का आविष्कार किया था, इसीलिए वे कहते हैं कि देश अनेक हैं, उनके निवासी भी अनेक हैं, उनकी रुचियाँ भी भिन्न-भिन्न हैं, अनेक राग बन चुके हैं, अनेक राग बन रहे हैं, अनेक राग बनेंगे, उन सभी रागों के वर्गीकरण के लिए मैं बहत्तर मेलों की सिद्धि कर रहा हूँ।[18] नाना-देशीय रागों में वेंकटमखी ने पन्तुवराली (हिन्दुस्तानी तोड़ी राग के स्वर) और कल्याणी (हिन्दुस्तानी कल्याण ठाठ के स्वर) गिनाये हैं।

ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि रामामात्य, पुण्डरीक, सोमनाथ इत्यादि दाक्षिणात्य आचार्यों ने हिन्दुस्तानी कल्याण ठाठ को अपने द्वारा स्वीकृत मेलों में स्थान नहीं दिया है।

काफ़ी ठाठ के स्वरों को शुद्ध माननेवाले लोचन और अहोबल ने आधुनिक कल्याण ठाठ की चर्चा की है। लोचन ने इसका नाम 'एमन' रखा है और अहोबल ने कल्याण। ये दोनों ही उस सम्प्रदाय के आचार्य नहीं हैं, जो मुखारी मेल के स्वरों को शुद्ध मानता है।

वेंकटमखी ने प्राचीनतावादी होने का दम्भ नहीं किया, वे स्पष्ट कहते हैं कि रत्नाकर में बुद्धिमान् शार्ङ्गदेव ने दो सौ साठ राग बताये हैं, परन्तु वे अब प्रसिद्ध नहीं हैं, अतः मैं अपने परम गुरु तानप्पा के द्वारा समुद्धृत उन रागों का निरूपण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करूँगा, जो प्रचार में हैं।[19] वेंकटमखी ने तानप्पा के मत के अनुसार आलाप का निरूपण किया।[20] उन ठाठों का भी वर्णन किया, जिनकी प्रकल्पना तानप्पाचार्य ने की थी।[21]

वेंकटमखी अधिक सूक्ष्मता में नहीं जाते। अन्य दाक्षिणात्य आचार्यों के समान वे भी वीणा पर सारिका-स्थापना का कार्य लक्ष्यज्ञ और चतुर शिल्पी पर ही छोड़ देते हैं, स्वयं सारिका-स्थापन के नियम बताने का कष्ट नहीं करते। [22]

शुद्धमेला और मध्यमेला वीणाओं पर तार मिलाने की पद्धति वेंकटमखी भी बताते हैं। 'एकराग मेला' और 'सर्वराग मेला' नामक उपभेद भी बताते हैं। अपने पिता गोविन्द दीक्षित की बनायी हुई रघुनाथेन्दुमेला की चर्चा भी इन्होंने की है और अपने द्वारा आविष्कृत वेंकटाध्वरि वीणा की भी। इनकी बनायी हुई वीणा की उपेक्षा [23] इनके समकालीनों ने की और इनके द्वारा आविष्कृत मेल भी पर्याप्त समय तक उपेक्षित रहे।[24]

वेंकटमखी मेल में तार षड्ज का भी ग्रहण कर लेते हैं, क्योंकि वे अष्टक-वादी हैं। उनके अनुसार 'सम्पूर्ण' राग में आठ, षाडव राग में सात और औडुव राग में छः स्वर होते हैं।[25] अवशिष्ट संसार सम्पूर्ण राग में सात, षाडव राग में छः और औडुव राग में पाँच स्वर मानता है।

षड्जग्राम और मध्यमग्राम के लक्षण तक से अन्य दाक्षिणात्यों के समान ही वेंकटमखी भी अपरिचित हैं। वे कहते हैं कि मध्यमग्रामीय त्रिश्रुति पंचम ही वराली मध्यम होकर लक्ष्य में आ गया है। मध्यमग्राम से उत्पन्न कहे जानेवाले मध्यमादि इत्यादि रागों में उस वराली मध्यम का दर्शन तक नहीं होता, अतः मध्यमग्राम अयुक्त है, अतः एक षड्जग्राम ही है।[26]

वराली-मध्यम की मध्यमग्रामीय त्रिश्रुति पंचम मानने की भूल ने ही मेल-सिद्धान्त की लुटिया डुबोई है, इसी भ्रान्ति ने मेलवादियों के लिए रत्नाकर दुरव-बोध बना दिया।

मुखारी के स्वरों को शुद्ध स्वर मानने की भूल अन्य दाक्षिणात्यों के अनुसार वेंकटमखी ने भी की है।

वेंकटमखी ने सामवराली राग को सामवेद से उत्पन्न कहा है।[27] वेंकटमखी के सामवराली मेल में 'स, रे, रे, म, प, ध, नि' इस विलक्षण स्वरावलि में दक्षिण का भी कोई सामवेदी सामगान नहीं करता। इस स्वरावलि को साम समुद्भूत बताना संसार का आठवाँ आश्चर्य है।

गालियाँ देने में वेंकटमखी परम पटु थे। जिस रघुनाथ नरेश का इन्होंने नमक खाया, उसे 'ग्वाला' कहकर उसका भी अपमान किया है।[28]

रामामात्य को इन्होंने पापी, विमूढधी इत्यादि कहकर ही सन्तोष नहीं किया, इससे आगे भी कुछ और कहा है।

रागवर्गीकरण में इन्होंने रामामात्य का प्रचण्ड खण्डन किया है, उस खण्डन की लपेट में वेंकटमखी के पिता गोविन्द दीक्षित भी आ गये हैं, यद्यपि उनका नाम-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निर्देश नहीं है।

वेंकटमखी का दैनन्दिन सम्पर्क मुसलमानों से था। वे कहते हैं कि कन्नड, तेलगू और तुरुष्क भाषा (दक्खिनी हिन्दी) के पद गानेवालों की आलाप-पद्धति सदृश है।[29]

'चतुर्दण्डी-प्रकाशिका' में वेंकटमखी ने बाईस श्रुतियाँ मानी हैं, परन्तु उन्होंने 'गुण्डक्रिया' राग में निबद्ध अपने गीत में श्रुति-संख्या चौबीस मानी है।[30]

पाश्चात्यों की चक्रिक प्रक्रिया से चौबीस श्रुतियों की सिद्धि होती है।[31] सम्भव है, वेंकटमखी पर यह विदेशी ईसाइयों का प्रभाव हो।

वेंकटमखी एक स्पष्टवादी और साहसी व्यक्ति थे, उन्होंने अपने पिता के सम्प्रदाय का अनुगमन न करके अपने परम गुरु तानप्पा का अनुवर्तन किया, जो रामामात्य या सोमनाथ के अनुयायी नहीं थे।

भातखण्डेकृत संस्कृत-ग्रन्थ

स्व. भातखण्डेजी के प्रयत्नों से निर्मित ग्रन्थ 'लक्ष्य-संगीत' का प्रथम संस्करण 1909 ई. में प्रकाशित हुआ। क्रमिक 'पुस्तक-मालिका' में इस ग्रन्थ के उद्धरण यत्र-तत्र हैं और वे इस प्रकार दिये गये हैं, जिससे लगता है कि भातखण्डेजी को 'लक्ष्य-संगीत' नामक ग्रन्थ कहीं से उपलब्ध हुआ है।[32]

अपनी इस नीति का स्पष्टीकरण करते हुए कालान्तर में भातखण्डेजी ने कहा कि मेरे परिश्रम के फलस्वरूप एक संस्कृत-ग्रन्थ (लक्ष्य-संगीत) की रचना हुई है।[33]

लक्ष्य-संगीत की रचना प्रचलित संगीत को नियमवद्ध करने के लिए हुई और इस लक्ष्य की पूर्ति में वे यहाँ तक सफल हुए हैं कि उनके आलोचकों तक को उनके परिश्रम के समक्ष नतमस्तक होना पड़ता है।

प्राचीन ग्रन्थों के सम्वन्ध में 'लक्ष्य-संगीत' में अभिव्यक्त उनके विचारों का सारांश यों है—

"शार्ङ्गदेव के पश्चाद्वर्ती आचार्य 'संगीत-रत्नाकर' को नहीं समझ सके। शार्ङ्गदेव द्वारा वर्णित मूर्च्छनाओं को समझना किसी भी पण्डित के लिए सम्भव न हुआ, न जाति-प्रकरण ही स्पष्ट हो सका। पुराने और नष्टप्राय संगीत को स्पष्ट किया जाना सम्भव नहीं। संगीत परिवर्तनशील है। जब तक ग्रामरागों के मेल का ज्ञान न हो, तब तक ग्रन्थ व्यर्थ है। यद्यपि मुझे भी प्राचीन ग्रन्थों पर गर्व है और मैंने उन्हें समझने के लिए यथासम्भव प्रयत्न भी किया, परन्तु मैं सफल न हुआ।"

अन्य मेलवादी आचार्यों के समान भातखण्डेजी ने भी ठाठों में रागों का वर्गीकरण किया। अपने अगले ग्रन्थ 'अभिनवरागमंजरी' में लक्ष्य-संगीत के राग-वर्गीकरण पर विचार करके कुछ संशोधन भी स्व. भातखण्डेजी ने किये हैं, जो उनकी विचारशीलता का परिणाम हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भातखण्डेजी रामपुर के गुणियों के ऐसे प्रतापी और समर्थ शिष्य थे; जिन पर रामपुर-परम्परा को गर्व है।[34]

प्राचीन ग्रन्थों के विषय में स्व. भातखण्डेजी द्वारा प्रकट किये हुए विचार अब पुराने हो चुके हैं। नाट्यशास्त्र की टीका 'अभिनव भारत' का प्रकाशन स्व. भातखण्डेजी के स्वर्गवास के कहीं पश्चात् हुआ है, इसी प्रकार महाराणा कुम्भा का 'संगीतराज' भी इस शताब्दी के उत्तरार्द्ध में प्रकाशित हुआ है।

भरत और शार्ङ्गदेव के स्वर, सारणाएँ, जातियाँ, मूर्च्छनाएँ और राग आज सभी स्पष्ट हैं।[35] भरत और शार्ङ्गदेव की मूर्च्छनाओं के मेलानुसारी रूप परिशिष्ट में दिये जा रहे हैं।

सन्दर्भ

1. विशेष विवरण के लिए देखिये 'संगीत-पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन', पृ. 22-31
2. रामपुर की रजा-लायब्रेरी में यह अनुवाद विद्यमान है। अनुवाद की तिथि इस पुस्तक में ही है। इसकी प्रतिलिपि अठारहवीं शती के पूर्वार्द्ध में हुई, उस समय दिल्ली पर मुहम्मदशाह रंगीले का शासन था।
3. संगीतशास्त्र, ले. के. वासुदेव शास्त्री, पृ. 25-26
4. संग्रह चूड़ामणि की भूमिका, ले. टी. आर. श्रीनिवास आयंगर, पृ. 12
5. देशीरागाश्च सकलाः षड्जग्राम समुद्भवाः।—स्वरमेल-कलानिधि, रागप्रकरण।
6. "सत्यं सन्ति महान्तः प्राचीनग्रन्थाः। परं तु तदाशयानवबोधेन लक्ष्याणामन्यथात्वमेवाभाति।" —राग-विबोध, पृ. 7·8
7. "श्रुत्यैकयाधिकत्वं न्यूनत्वं वा न दोषाय।"—वही, पृ. 68
8. वही, पृ. 99
9. राग-विबोध, पृ. 120
10. वही, पृ. 210-219
11. वही, पृ. 66
12. वही, पृ. 93
13. वही, पृ. 92
14. मुखमूर्च्छति इतिमुखारी, पृ. 93
15. वही, पृ. 11, 98
16. वही, पृ. 102
17. वही, पृ. 60
18. चतुर्दण्डी-प्रकाशिका, पृ. 42-43
19. चतुर्दण्डी-प्रकाशिका, पृ. 57
20. वही, पृ. 67
21. वही, पृ. 68
22. वही, पृ. 2
23. भरतकोष, पृ. 666
24. संगीतशास्त्र, पृ. 152

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

25. चतुर्दण्डी-प्रकाशिका, पृ. 66
26. वही, पृ. 28
27. चतुर्दण्डी-प्रकाशिका, पृ. 61
28. भरत-कोष, पृ. 636
29. चतुर्दण्डी-प्रकाशिका, पृ. 13
30. संग्रह चूड़ामणि, भूमिका, पृ. 11-12
31. देखिए, संगीत-चिन्तामणि, पृ. 363
32. संगीत-चिन्तामणि, पृ. 410
33. उत्तर भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 56

    भातखण्डेजी के समसामयिक कुछ लोगों का कथन है कि स्व. भातखण्डेजी का संस्कृत-ज्ञान कामचलाऊ था. वे संस्कृत-ग्रन्थों को समझने में 'शास्त्री' लोगों की सहायता लेते थे। इस तथ्य की सिद्धि संगीत-कार्यालय से प्रकाशित हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति, तीसरा भाग, पृ. 62 पर भातखण्डेजी के शब्द "मेरे शास्त्री कहते हैं—गान्धारो मस्य श्रुतिद्वयं गृह्णाति। ऐसा समझो।" करते हैं। अस्तु, हम तो यह समझते हैं कि लक्ष्य-संगीत में प्रतिपादित विचार भातखण्डेजी के हैं, भाषा उनकी हो या न हो।
34. संगीत-चिन्तामणि, पृ. 538-607
35. इन वस्तुओं के स्पष्टीकरण के लिए पढ़िये, 'संगीत-चिन्तामणि' और 'भरत का संगीत-सिद्धान्त'।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुस्लिम नरेश और संगीत

संगीत की ग्राह्यता अथवा त्याज्यता के विषय में भले ही मौलवियों और सूफ़ियों में मतभेद रहा हो, मुस्लिम नरेश प्रायः संगीतानुरागी रहे हैं। विजित राजाओं की रानियां, राजपुत्रियों और दासियों को अपनी सम्पत्ति समझने का अधिकार इस्लाम ने मुस्लिम नरेशों को दिया था, अतः संगीत उनके जीवन में रच गया था।

सैनिक अभियानों के समय भी मनोरंजन के लिए गायक और संगीत-कला-कुशल दासियाँ सेना के साथ चलती थीं।

यहाँ कुछ मुस्लिम नरेशों के संगीतानुराग के विषय में संक्षिप्त चर्चा की जा रही है।

महमूद ग़ज़नवी (मृ. 1030 ई.)

महमूद ग़ज़नवी के मन में विद्वानों और कवियों के प्रति अत्यन्त आदरभाव था। उनके शास्त्रार्थों को वह ध्यानपूर्वक सुनता था। एशिया के कोने-कोने से उसकी सभा में विद्वान् आते रहते थे।

गणित, दर्शन तथा ज्योतिष का महाविद्वान् अल्बेरूनी,[1] इतिहासकार उतबी, दर्शन तथा संगीत का प्रसिद्ध विद्वान् फ़रावी, 'तारीखे सुबुक्तगीन' का लेखक बैहाकी तथा शाहनामा का प्रसिद्ध लेखक महाकवि फ़िरदौसी महमूद ग़ज़नवी के आश्रित थे।

महमूद ग़ज़नवी युद्ध की विभीषिका में भी सुमधुर संगीत अथवा कविता सुनने के लिए समय निकाल लेता था।[2]

संगीत के सम्बन्ध में महमूद ग़ज़नवी के उत्तराधिकारी सुलतान भी प्रायः यही दृष्टिकोण रखते थे।

मुहम्मद ग़ोरी (रा. का. 1193-1205 ई.)

मुहम्मद ग़ोरी के प्रबल समर्थक और भारत में सूफ़ियों की चिश्ती-परम्परा के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आदिम प्रवर्तक ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती अजमेरी (मृ. 1235 ई.) परम संगीतानुरागी थे, अतः मुहम्मद ग़ौरी का संगीतानुराग स्वयंसिद्ध है। वह विद्वानों का आदर करता था।[3]

क़ुतुबुद्दीन ऐबक़ (रा. का. 1206-1210 ई.)

क़ुतुबुद्दीन ऐबक़ के पीर क़ुतुबुद्दीन बख़्तयार काकी थे, इनका स्वर्गवास हज़रत अहमद जन्म का एक शेर सुनते-सुनते हुई। शेर है—

"कुश्तगाने ख़ंजरे तस्लीमरा, हर ज़माँ अज़ ग़ैब जाने दीगर अस्त।" अर्थात् —"जो ईश्वर के प्रति आत्म-समर्पण और विनय की तलवार से भस्मसात् हो चुकते हैं, उन्हें प्रतिक्षण परोक्ष से एक जीवन मिलता रहता है।"

ख़्वाजा बख़्तयार काकी चार दिन तक निरन्तर यह शेर सुनते रहे थे। रस-मग्न अवस्था में ही उनका स्वर्गवास हुआ।[4]

स्पष्ट है कि ऐबक़ भी अपने पीर से प्रभावित रहा।

ऐबक़ के सेनापति मुहम्मद बख़्तयार ने बंगाल और बिहार पर अधिकार किया। लखनौती और आसपास के प्रदेशों में उसके अमीरों ने मस्जिदों, मदरसों और ख़ानक़ाहों की स्थापना कर दी।[5] ये ख़ानक़ाह चिश्तियों और क़व्वालों के गढ़ थे।

शम्सुद्दीन इल्तुतमिश (रा. का. 1210-1235 ई.)

यह भी ख़्वाजा बख़्तयार काकी का भक्त और मुरीद था। शेख़ मुईनुद्दीन चिश्ती के मुरीद क़ाज़ी हमीदुद्दीन नागौरी इसके युग में दिल्ली आये। (इनका वास्तविक नाम शेख़ मुहम्मद इब्नेअता था। ये मुहम्मद ग़ोरी के ज़माने में बुख़ारा से आये और नागौर के क़ाज़ी बना दिये थे।) वे रात-दिन संगीत सुनते और मस्त रहते थे। न्याय-विभाग के दो अधिकारियों, साद और एमाद के साथ संगीत के औचित्य के विषय में क़ाज़ी हमीदुद्दीन नागौरी ने शास्त्रार्थ किया। अपने क़व्वाल महमूद से ग़ज़लें सुनवायीं और इतने भाव-मग्न हो गये कि उन्हें काँटों और अंगारों का पता ही न चला, जो साद और एमाद ने परीक्षा के लिए उनके पैरों के नीचे बिछवा दिये थे। क़ाज़ी नागौरी उन काँटों और अंगारों पर ही नाचते रहे।[6]

यह घटना शम्सुद्दीन इल्तुतमिश के संगीतानुराग को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है।

शम्सुद्दीन इल्तुतमिश के राज्यकाल में ही कश्मीरी आचार्य शार्ङ्गदेव ने अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ 'संगीत-रत्नाकर' देवगिरि के यादववंशीय राजा के आश्रय में रहकर लिखा, जो सर्वथा स्वतन्त्र था।

शम्सुद्दीन इल्तुतमिश के उत्तराधिकारियों पर भी चिश्ती-परम्परा का प्रभाव था।

क़ुतुबुद्दीन बख़्तयार काकी के ख़लीफ़ा बाबा फ़रीदुद्दीन गंजशकर का स्वर्ग-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वास 1256 ई. में हुआ था, इससे पूर्व ही उनके ख़लीफ़ा निज़ामुद्दीन चिश्ती दिल्ली में रहकर चिश्ती-परम्परा के सिद्धान्तों का प्रचार कर रहे थे।

ग़यासुद्दीन बलबन (रा. का. 1265-1287 ई.)

ग़यासुद्दीन बलबन की सभाओं में संगीत होता था।[7] बलबन के पुत्र मुहम्मद ने शेख़ उस्मान तथा शेख़ वहाउद्दीन ज़करिया के पुत्र शेख़ क़दवा को अपनी सभा में बुलाकर सूफ़ियों की संगीत-गोष्ठी आयोजित करायी, जिसमें अरबी ग़ज़लें गायी गयीं। वे और दूसरे दरवेश मस्ती में नाचने लगे। जब तक 'समा' होता रहा मुहम्मद हाथ बाँधे खड़ा रहा और फूट-फूटकर रोता था।[8]

बलबन का दूसरा पुत्र महमूद (बुग़रा ख़ाँ) भी संगीत और नृत्य का परम रसिक था।[9]

कैक़ुबाद (रा. का. 1287-1290)

कैक़ुबाद के युग में प्रत्येक गली में सुमधुर ग़ज़ल-गायक उत्पन्न हो गये। गायकों और सुन्दरियों के भाग्य जाग गये। देश के चारों ओर से रमणियाँ, चारण, विदूषक और भाँड दरबार में पहुँचने लगे।[10]

उसके युग में वृद्धा वेश्याओं ने अपनी पुत्रियों तथा अन्य युवतियों को गाना-बजाना, नाचना, ग़ज़ल पढ़ना, शतरंज और चौसर खेलना सिखाया। उन्हें घुड़सवारी, गेंद खेलने और भाला चलाने की भी शिक्षा दी गयी। राज-दरबार में उठने-बैठने के नियम सिखाये गये।[11]

कैक़ुबाद की प्रशंसा में ग़ज़ल, कौल, हुब तथा कीलानी लिखे गये। उसके दरबार में दक्ष गायक फ़ारसी एवं हिन्दी गाने गाते थे।[12]

कैक़ुबाद के दरबार में गायकों के समूह अवध से पहुँचते थे, उन्हें सम्पत्ति से लाद दिया जाता था।[13]

कैक़ुबाद का एक अमीर मलिक निज़ामुद्दीन विद्वानों, वैद्यों, ज्योतिषियों और क़व्वालों को दान-दक्षिणा देता था। ऐसे ही योग्य अमीरों के बल पर कैक़ुबाद का राज्य टिका था।

जलालुद्दीन ख़िलजी (रा. का. 1290-1296 ई.)

जलालुद्दीन के भोग-विलास की महफ़िलों में अद्वितीय नदीम (बन्दीजन) सुन्दर मधुबालाएँ और युवतियाँ एकत्र हो गयी थीं।

उसके गायकों में मुहम्मद सना चंगी ढोल बजाता, फ़क़ाई की पुत्री फ़ुतूहा और नुसरत ख़ातून गाना गाती थीं।

दुख़्तर ख़ासा, नुसरत बीबी और मेहर अफ़रोज़ के हाव-भाव और कटाक्ष साक्षात् मोहन मन्त्र थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अमीर खुसरो अपनी ग़ज़लों में इन सुन्दरियों और सुन्दर किशोरों के रूप और छवि का वर्णन करते थे ।[14]

अलाउद्दीन खिलजी (रा. का. 1296-1316 ई.)

प्रसिद्ध इतिहासकार ज़ियाउद्दीन बरनी ने 'तारीखे फ़ीरोज़शाही' में कहा है कि अलाउद्दीन की प्रत्येक सफलता के मूल में शेख निजामुद्दीन चिश्ती का अनुग्रह था ।[15] शेख साहब का संगीतानुराग प्रसिद्ध है ।

अलाउद्दीन के राज्यकाल में शेख फ़रीदुद्दीन के उर्स के समय होनेवाली सूफ़ियों की संगीत-गोष्ठी में भारत के विभिन्न प्रदेशों से असंख्य व्यक्ति आते थे ।[16]

मौलाना हमीदुद्दीन, मौलाना लतीफ़, उनके पुत्र अल्ताफ़ और मुहम्मद अच्छे गायक थे । ग़ज़ल गायकों में महमूद, मुहम्मद और ईसा खुदादी अद्वितीय थे । इस युग में क़व्वाल भी अनेक थे ।[17]

गुजरात की राजकुमारी देवलदेवी के साथ अलाउद्दीन के पुत्र खिज्र खाँ के विवाह की तैयारियाँ तीन वर्ष तक होती रही थीं । इस समय देवगिरि के कलाकार दिल्ली पहुँचे थे, उनमें अनेक गायिकाएँ और नर्तकियाँ भी थीं । इनकी कला के प्रदर्शन निरन्तर हुए, इनके साथ भारतीय वाद्य भी थे ।[18]

सम्भवतः इसी अवसर पर गोपाल नायक भी दिल्ली पहुँचे । गोपाल नायक का एक ध्रुवपद उपलब्ध है, जिसमें अलाउद्दीन के प्रताप का वर्णन है ।[19]

अलाउद्दीन के युग में ही गुजरात की एक सुन्दर संगीतजीवी जाति 'परवार' के असंख्य नर-नारी दिल्ली में बस गये थे और इनकी पहुँच अन्तःपुर तक थी ।

क़ुतुबुद्दीन खिलजी (रा. का. 1316-1320 ई.)

क़ुतुबुद्दीन खिलजी संगीत-मर्मज्ञ बादशाह था । परवार नामक एक सुन्दर संगीत-जीवी जाति का एक नौमुस्लिम नवयुवक खुसरो खाँ इसका कृपापात्र था । 'तारीखे फ़ीरोज़शाही' के अनुसार यह नारी-वेश में जनता के सामने आ जाता था । इसका कार्य संगीत और नृत्य में मग्न रहना था ।[20]

ग़यासुद्दीन तुग़लक़ (रा. का. 1320-1325 ई.)

इसकी माँ जाटनी थी और पिता तुर्क । यह भोग-विलास से दूर था । सूफ़ियों के द्वारा सुने जानेवाले संगीत की वैधता के विषय में इसकी सभा में एक शास्त्रार्थ हुआ था, जिसमें 'समा' की वैधता को शेखज़ादा हुस्सामुद्दीन ने चुनौती दी और 'समा' की वैधता के पक्ष का समर्थन शेख निज़ामुद्दीन चिश्ती ने किया था । शेख बहाउद्दीन ज़करिया के पोते मौलाना इल्मुद्दीन ने निज़ामुद्दीन चिश्ती के पक्ष में व्यवस्था देते हुए कहा था कि अन्य मुस्लिम देशों में भी सूफ़ी, वाद्यों के साथ 'समा' सुनते हैं । शेख जुनैद बग़दादी (मृ. 911 ई.) तथा शेख अबूबक्र शिब्ली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(मृ. 946 ई.) के युग से सूफ़ी 'समा' सुनते आये हैं। यह व्यवस्था सुनकर ग़यासुद्दीन तुग़लक़ ने 'समा' सुनने के विरुद्ध कोई आदेश न दिया।[21]

ग़यासुद्दीन तुग़लक़ के मन में शेख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती के प्रति सद्भावना नहीं थी।

ग़यासुद्दीन तुग़लक़ जब लखनौती के अभियान से लौट रहा था, तब उसने आदेश भेजा था कि उसके दिल्ली पहुँचने से पूर्व निज़ामुद्दीन चिश्ती दिल्ली छोड़ दें। यह आदेश सुनकर निज़ामुद्दीन चिश्ती ने कहा—'अभी दिल्ली दूर है।'

दिल्ली पहुँचने से पूर्व ही एक महल के नीचे दबकर ग़यासुद्दीन तुग़लक़ की मृत्यु हो गयी।

मुहम्मद तुग़लक़ (रा. का. 1325-1351 ई.)

यह शेख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती का परम भक्त था और इसने शेख़ साहब के जनाज़े को कन्धा दिया था।

मुहम्मद तुग़लक़ के दरबार में 1200 गवैये ऐसे थे, जो गान-विद्या सिखाते भी थे। दास गायक एक सहस्र थे। अरबी, फ़ारसी और हिन्दी के एक सहस्र कवि थे। सुलतान के गायकों में से यदि कोई अन्यत्र गा देता, तो प्राण-दण्ड का भागी होता था।[22]

जब सुलतान महल में होता या यात्रा पर होता, तब दो सौ नक़्क़ारे, चालीस बड़े तम्बूरे, बीस बड़ी दुन्दुभियाँ और दस बड़े झाँझ बजते थे।[23]

सेना के साथ ढोल, नफ़ीरी तथा सरना भी होती थीं। संगीतज्ञों, वादकों और नर्तकों के अतिरिक्त सुलतान के सामने कोई भी सवार होकर नहीं चल सकता था।[24]

ईद के दरबार में उस वर्ष हारे हुए राजाओं की बन्दी बनायी राजकुमारियाँ गाती और नाचती थीं और तत्पश्चात् वे मुख्य अमीरों या परदेसियों को बाँट दी जाती थीं। तत्पश्चात् हारे हुए अन्य हिन्दुओं की पुत्रियाँ गाती और नाचती थीं और सुलतान के भाइयों, सम्बन्धी तथा पुत्रों में बाँट दी जाती थीं। अगले दिन बन्दिनी गायिकाएँ आती थीं, नाचने-गाने के बाद वे मुख्य दासों में बाँट दी जाती थीं।[25]

मुहम्मद तुग़लक़ ने चीन के बादशाह के पास इब्नेबत्तूता के हाथ संगीत-नृत्य-कुशल सौ हिन्दू दासियाँ और दास भेजे थे।[26]

फ़ीरोज़ तुग़लक़ (रा. का. 1351-1388)

फ़ीरोज़ तुग़लक़ जब किसी यात्रा पर जाता, तब रूपवती दासी गायिकाएँ मनो-रंजन करने तथा सम्भोग का आनन्द देने के लिए साथ होती थीं। प्रत्येक शिविर में गायक गाना गाया करते थे। सुलतान की यात्रा में सैनिकों को इतना सुख मिलता था कि वे घर लौटने की इच्छा न करते थे।[27]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ईद के दरबार में समस्त गायक केसरिया वस्त्र तथा लाल पगड़ी धारण करते थे। नर्तकियाँ चालीस-चालीस हज़ार तन्कों के ज़ड़ाऊ बहुमूल्य वस्त्र धारण करती थीं। क़व्वाल वाद्य ले लेते थे और नर्तकियाँ नृत्य प्रारम्भ करती थीं। उन्हें पारितोषिक मिलता था।[28]

शुक्रवार की नमाज़ के पश्चात् सुलतान गाना सुनता था। दिल्ली के गायक अपने चार-पाँच वर्ष के पुत्रों तक को फ़ीरोज़ाबाद ले आते थे, क्योंकि पारितोषिक में सभी संगीतजीवियों और उनके बालकों का हिस्सा होता था।

फ़ीरोज़शाह ने बड़े ढोल का आविष्कार किया था। लम्बाई और चौड़ाई में ऐसे ढोल सामान्य ढोलों की अपेक्षा एक हाथ अधिक थे।

सिकन्दर लोदी (रा. का. 1488-1517 ई.)

मीरान सैयद नूरुल्लाह तथा सैयद इब्नुर्रसूल सिकन्दर लोदी के दरबार में महान संगीत-मर्मज्ञ थे। बादशाह की सेवा में उपस्थित होने के इच्छुक प्रत्येक कलाकार को ये लोग पहले सुनते थे, उसके योग्य प्रमाणित होने पर ही उसे बादशाह की सेवा में उपस्थित होने की अनुमति मिलती थी।[29]

सुलतान के दरबारियों में मियाँ ताहा महान् संगीत-मर्मज्ञ थे। बड़े-बड़े ब्राह्मण और संगीतज्ञ उससे शिक्षा लेते थे।[30]

एक पहर रात बीत जाने पर शहनाई बजानेवाले दस व्यक्ति उपस्थित होते थे और क्रमशः 'गौरा', 'कल्याण', 'कानड़ा' और 'हुसेनी' राग बजाते थे।[31] 'तारीखे दाऊदी' ने 'गौरा' के स्थान पर मालकोस लिखा है।[32] जो ठीक नहीं प्रतीत होता।

'तारीखे दाऊदी' के अनुसार सिकन्दर लोदी के प्रिय राग केदारा, अडाना, हुसेनी और रामकली थे।[33]

सिकन्दर लोदी के संगीतानुराग के कारण उसके राज्य में अद्वितीय संगीतज्ञ एवं गायक एकत्र हो गये थे। एक प्रहर रात्रि व्यतीत हो जाने पर वह संगीत-सभा का आयोजन कराता था।

पन्द्रह सौ दीनार में उसने चार दास मोल लिये थे, जिनमें एक चंगवादक, दूसरा क़ानूनवादक, तीसरा तम्बूरावादक और चौथा वीणावादक था।[34]

सोलहवीं शती के कुछ अन्य मुस्लिम नरेश और संगीत

मुज़फ़्फ़रशाह गुजराती (रा. का. 1511-1526 ई.)

इसका कण्ठ-स्वर अत्यन्त मधुर था और यह प्रत्येक प्रकार के वाद्यों को बजाने में निपुण था, उस युग के अनेक गुणी इसके शिष्य थे। इसने गुजरात को संगीत का केन्द्र बना दिया।[35]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बहादुरशाह गुजराती (रा. का. 1527-1537)

यह अत्यन्त संगीतानुरागी था। बैजू और बख्शू दोनों ने इसके दरबार का आश्रय लिया था।[36] माँडू का पतन 1535 ई. में हुआ। बैजू पकड़कर हुमायूँ के समक्ष ले जाये गये, परन्तु अवसर मिलते ही बहादुरशाह गुजराती के पास भाग आये।[37] यह स्थिति बहादुरशाह के संगीत-संरक्षण का प्रमाण है। बैजू का शिष्य गोपाल भी इसके आश्रित था।

महमूद द्वितीय गुजराती (राज्यारोहण 1537 ई.)

इसका महामन्त्री दरिया खाँ संगीत का महान् संरक्षक था। इसके मन्त्रित्व काल (1538-1554 ई.) में अहमदाबाद में घर-घर संगीत गूँजने लगा। 'मिराति सिकन्दरी' के अनुसार बख्शू का पुत्र हुसेनी, नायक चतुर के पुत्र रंग खाँ और मल्ही, खेमकरन तथा नायक अब्भू इसके आश्रित प्रमुख गायक थे।[38]

इस्लामशाह सूर (रा. का. 1545-1549 ई.)

इस्लामशाह सूर की प्रशंसा में कुछ ध्रुवपद मिलते हैं। इसके अनुग्रह पात्र दौलत खाँ के विषय में भी कुछ ध्रुवपद प्राप्त होते हैं। सम्भवतः तानसेन भी इसके आश्रय में थे।

मुहम्मद आदिलशाह अदली (1549-1556 ई.)

प्रसिद्ध और इतिहास-प्रसिद्ध हेमूँ इसका महामन्त्री था। मुहम्मद आदिलशाह को 'अदली' भी कहा जाता है। रामदास, तानसेन और बाज़बहादुर इसके शिष्य थे।[39]

बाज़बहादुर (रा. का. 1555-1560 ई.)

इनका वास्तविक नाम बायज़ीद था और ये शुजाअत खाँ सूर के पुत्र थे।

लोकगीतों की प्रसिद्ध नायिका रूपमती इनकी पतिव्रता प्रेयसी थी। 1560 ई. में अकबर के सेनापति अदहम खाँ ने बाज़बहादुर को पराजित किया। रूपमती ने अपनी मर्यादा बचाने के लिए विषपान करके प्राण दे दिये। कुछ समय के पश्चात् अकबर के प्रतिनिधि पीरमुहम्मद को हराकर इन्होंने पुनः अपने राज्य पर अधिकार किया, परन्तु 1563 ई. में इन्हें पुनः भागना पड़ा। ये अनेक स्थानों पर शरण लेते हुए मेवाड़ के राणा उदयसिंह की शरण में गये।

1571 ई. में इन्हें अकबर ने बुला लिया और कालान्तर में इन्हें दो हज़ारी मनसबदार बना दिया गया।

अबुल फ़ज़्ल ने इनकी गणना अकबरी दरबार के प्रमुख कलाकारों में की है। रागदर्पण के अनुसार बाज़बहादुर ख़ुसरो के इल्म के माहिर थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सन्दर्भ

1. मुसलमानों की दृष्टि में संगीत 'गणितशास्त्र' की एक शाखा है, दर्शन और गणित के विद्वानों को संगीत का ज्ञान अनिवार्य रूपेण होता था। 'हकीम' शब्द का अर्थ 'सकल कला-निष्णात' आचार्य है।
2. मध्य-युग का इतिहास, पृ. 97
3. वही, पृ. 144
4. ख्वाजा हसन निज़ामी, पृ. 121-122
5. आदि तुर्ककालीन भारत, पृ. 14
6 वही, पृ. 301
7. वही, पृ. 146
8. वही, पृ. 171-172
9. वही, पृ. 190
10. वही, पृ. 214-215
11. वही, पृ. 232
12. वही, पृ. 232
13 वही, पृ. 237
14. खिलजीकालीन भारत, पृ. 15-16
15. वही, पृ. 90
16. वही, पृ. 103-104
17. वही, पृ. 115
18. वही, पृ. 173-174
19. संगीत चिन्तामणि, पृ. 318
20. खिलजीकालीन भारत, पृ. 133
21. तुग़लककालीन भारत, भाग-1, पृ. 152-153
22. वही, पृ. 317
23. वही, पृ. 319
24. वही, पृ. 247
25. तुग़लककालीन भारत, पृ. 189
26. वही, पृ. 189
27. तुग़लककालीन भारत, भा. 2, पृ. 220
28. वही, पृ. 144
29. उत्तर तैमूरकालीन भारत, पृ. 134
30. वही, पृ. 175
31. वही, पृ. 134
32 वही, पृ. 262
33. वही, पृ. 332
34. वही. पृ. 332
35. मिराति सिकन्दरी, उर्दू 'आजकल', अगस्त 1956, पृ. 103 पर उद्धृत
36. बादशाह नामः, " " "
37. मिराति सिकन्दरी, रामपुर-प्रति, पृ. 249 ब
38. उर्दू 'आजकल', अगस्त 1956, पृ. 105
39. मुन्तख़बुत्तवारीख़, खण्ड 2, पृ. 557,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बहमनी सुलतान और संगीत

1326 ई. में मुहम्मद तुग़लक़ ने देवगिरि को अपनी राजधानी बनाकर उसका नाम दौलताबाद रखा। उसके आदेश के अनुसार उसकी समस्त प्रजा भी दिल्ली से दौलताबाद आ गयी। निज़ामुद्दीन चिश्ती की प्रेरणा से चार सौ सूफ़ी पहले से ही दक्षिण में आ बसे थे।

मुहम्मद तुग़लक़ के आदेश से शेख बुरहानुद्दीन गरीब को भी दौलताबाद आना पड़ा था, जो निज़ामुद्दीन चिश्ती के मुरीद और खलीफ़ा थे। राजधानी-परिवर्तन के परिणामस्वरूप गायक और क़व्वाल भी दिल्ली से देवगिरि आ गये थे। इस परिस्थिति ने दक्षिण के संगीत को अत्यन्त प्रभावित किया। फलतः ईरानी मुक़ाम-पद्धति ही राग-वर्गीकरण का प्रमुख आधार बन गयी, जिसका विकास मेलकर्ता-सिद्धान्त के रूप में हुआ।

1347 ई. में ईरान के ही एक शरणार्थी शाहज़ादे हसन ने बहमनी साम्राज्य की नींव डाली। हसन शेख निज़ामुद्दीन चिश्ती का मुरीद और अमीर खुसरो का मित्र था। मुहम्मद तुग़लक़ ने शेख-निज़ामुद्दीन चिश्ती के अनेक खलीफ़ाओं को बलात् राज्य-कार्य में नियुक्त करना चाहा था, यहाँ तक कि शेख निज़ामुद्दीन चिश्ती के प्रमुख उत्तराधिकारी शेख नसीरुद्दीन महमूद चिराग़ देहली भी उसकी कोपदृष्टि से न बचे थे। अतः चिश्ती-परम्परा के भक्तों के लिए बहमनी साम्राज्य शरण-स्थल बन गया था। शेख निज़ामुद्दीन चिश्ती ने अपने जीवन-काल में ही यह भविष्यवाणी की थी कि हसन दक्षिण का अधिपति होगा।[1]

अलाउद्दीन हसन बहादुरशाह प्रथम (रा. का. 1347-1359 ई.)

निज़ामुद्दीन चिश्ती जैसे 'समा' के समर्थक व्यक्ति का परम अनुग्रहपात्र हसन संगीतानुरागी था। शीराज़-निवासी हक़ीम नसीरुद्दीन, समरकन्द-निवासी सदरुश्शरीफ़, मौलाना असामी और रज़ीउद्दीन, जगाजोत (जगज्जोति) जैसे महापुरुषों ने इसकी सभा का आश्रय लिया था।[2]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुहम्मदशाह प्रथम (रा. का. 1359-1373 ई.)

मुहम्मदशाह बहमनी की सभा में ख़ुसरो की ग़ज़लें गानेवाले तीन सौ गायक थे। यह स्थिति दक्षिण संगीत पर मुस्लिम प्रभाव की द्योतक है। इन तीन सौ गायकों के लिए मुहम्मदशाह ने विजयनगर के स्वतन्त्र शासक बुक्क से भयानक युद्ध करके पारिश्रमिक वसूल किया।[3] इसके युग में विजयनगर के राग-वर्गीकरण पर भली-भाँति मुक़ाम-पद्धति का प्रभाव हो गया।

मुहम्मदशाह की मृत्यु के पश्चात् मुजाहिदशाह (रा. का. 1373-1378 ई.) और मुहम्मदशाह द्वितीय (रा. का. 1378-1397 ई.) भी संगीतानुरागी हुए, परन्तु फ़ीरोज़ बहमनी का संगीतानुराग अधिक था।

फ़ीरोजशाह (1397-1422 ई.)

शेख़ नसीरुद्दीन चिराग़ देहली के ख़लीफ़ा शेख़ बन्दानवाज़ गेसूदराज़ फ़ीरोज़ के राज्यकाल में गुलबर्गा आये।[4] इनके साथ इनके अनेक गुरु-बन्धु भी आये। शेख़ का संगीतानुराग अत्यधिक था।

फ़ीरोज़ संगीत का दीवाना था और उसके अन्तःपुर में अनेक स्त्रियाँ थीं। यह अनेक भाषाविद् था और उन भाषाओं को भली-भाँति बोल सकता था।[5]

फ़ीरोज़ का क़ाज़ी सिराज और उसके कुछ सहयोगी गाने, बजाने और नाचने में यहाँ तक निपुण थे कि उन्होंने नर्तकियों के छद्मवेश में नाचते-नाचते, हरिहर द्वितीय के पुत्र का वध कर दिया था।[6]

1406 ई. में फ़ीरोज़ ने विजयनगर के शासक देवराय प्रथम को पराजित करके बलपूर्वक उसकी पुत्री का पाणिग्रहण कर लिया था।[7] इन सम्बन्धों के कारण विजयनगर के संगीत पर ख़ुसरो-परम्परा का रंग और गाढ़ा हो गया था।

फ़िरिश्ता के अनुसार फ़ीरोज़ के अन्तःपुर में योरोप, चीन, रूस, तुर्की, सिरकासिया, जार्जिया, बंगाल और अफ़ग़ानिस्तान की नारियाँ थीं।[8]

अहमदशाह (रा. का. 1422-1435 ई.)

अहमदशाह बन्दानवाज़ गेसूदराज़ का परम भक्त था। इसके बादशाह होने की भविष्यवाणी शेख़ साहब ने अपनी मृत्यु से पूर्व ही कर दी थी, संगीत के प्रति इसे भी रुचि थी।

अलाउद्दीन द्वितीय (1435-1457 ई.)

इसने कोंकण पर अधिकार करके लौनेखेड़ के हिन्दू राजा की पुत्री से विवाह किया। सामान्यतया संगीत-रसिक था। यह युद्ध-प्रिय था। इसके युग में दक्खिनी मुसलमानों और विदेशी शिया मुसलमानों में पारस्परिक विग्रह बहुत बढ़ गये थे। नृशंस और क्रूर होने के साथ ही साथ यह आमोदप्रिय भी था।

पश्चाद्वर्ती बहमनी सुलतानों का संगीत की दृष्टि से सामान्य महत्व है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क़ुतुबशाही सुलतान और संगीत

बहमनी साम्राज्य के विघटन के परिणामस्वरूप गोलकुण्डा, बीजापुर, अहमदनगर, बरार और बीदर पृथक्-पृथक् स्वतन्त्र राज्य हो गये। गोलकुण्डा में कुतुबशाही राजवंश का संस्थापक सुलतान क़ुली क़ुतुबशाह (1518-1543 ई.) हुआ। इसके पश्चात् क्रमशः जमशेद क़ुली (रा. का. 1543-1550 ई.), सुबहान क़ुली (1550-1550) और इब्राहीम क़ुली (रा. का. 1550-1580 ई.) का शासन रहा। इब्राहीम क़ुली का पुत्र मुहम्मद क़ुली क़ुतुबशाह एक महत्त्वपूर्ण सुलतान हुआ है।

मुहम्मद क़ुली क़ुतुबशाह (1580-1611 ई.)

इसने हैदराबाद को सुन्दर बनाकर उसे अपनी राजधानी बनाया। उसमें अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ और वाजिदअली शाह चारों के गुण विद्यमान थे।[9] इसकी बारह प्रधान प्रेयसियाँ (प्यारियाँ) थीं, जिनके नाम नन्हीं, साँवली, कँवली, प्यारी, गोरी, छबीली, लाला, लालन, मोहन, हैदरमहल, महबूब और मुश्तरी थे।[10]

इनके अतिरिक्त बिलक़ीसज़मानी, हातम, बहमनी हिन्दू, हिन्दी छोरी, पद्मिनी, सुन्दर, सज्जन, रँगीली, नूर की मूरत, कसबिन, नाज़नीन, चंचल नैन, माहअबरू, काबारुख़, सरो ख़ुशक़द, फ़ितना दकन, तिलंगन और दकन की पुतली नामक प्यारियाँ भी थीं।[11]

इसकी प्रियतमाओं में कुछ गीत-नृत्य-विशारदा भी थीं, जैसे हैदरमहल। एक प्रियतमा की प्रशंसा करते हुए मुहम्मद क़ुली ने उसे मुखारी, सबाही (सुहाई), घनाश्री, गौरी, सारंग, मल्हार और रामकली गाकर मन मोह लेनेवाली बताया है।[12]

मुहम्मद क़ुली ने अपनी इन प्रियतमाओं के विषय में काव्य-रचना की है, मुहम्मद क़ुली के काव्य में प्रियतम को 'पिया, पीउ, सजन, साईं, गुसाईं इत्यादि कहा गया है। उसके काव्य में मेनका, रम्भा, उर्वशी इत्यादि अप्सराओं की भी चर्चा है। इन्द्रधनुष, वसन्त ऋतु, मोर, चकोर, पपीहा, कोयल, हंस, भँवरा भी उसके काव्य में हैं।

मुहम्मद क़ुली क़ुतुबशाह शिया था। इतिहास-प्रसिद्ध चाँदबीबी इसकी बहन थी। यह अकबर का समसामयिक था।

शिया होने के कारण सभी क़ुतुबशाही सुलतान मर्सिया सुनते थे, परन्तु उन सबमें अब्दुल्ला क़ुतुबशाह (रा. का. 1625-1672 ई.) का अनुराग संगीत के प्रति विशेष रूप से था।

आदिलशाही सुलतान और संगीत

यूसुफ़ आदिलशाह (1489-1510 ई.)

बीजापुर में आदिलशाही राजवंश के संस्थापक यूसुफ़ आदिलशाह ने मुकुन्दराव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नामक एक मराठी सरदार की पुत्री का पाणिग्रहण किया। इसने हिन्दुओं को उच्च पदों पर नियुक्त किया। यह संगीतानुरागी एवं विलासी था।

यों तो इस वंश के सभी सुलतान संगीतानुरागी हुए, परन्तु इब्राहीम आदिल-शाह द्वितीय का नाम संगीत-जगत् में अमर है।

इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय (रा. का. 1580-1627 ई.)

यह मुहम्मद क़ुली क़ुतुबशाह का बहनोई था, चाँदबीबी इसे ब्याही थी। साथ ही साथ इसे अपनी पुत्री का विवाह अकबर के आदेश से शाहज़ादा दानियाल के साथ करना पड़ा था। जिन मुग़ल-सम्राटों ने अपनी पुत्रियों के विवाह की चिन्ता यावज्जीवन नहीं की, वे दूसरों का सिर झुकाने के लिए उनकी पुत्री माँगते थे। दूसरों के द्वार तक बारात सजाकर जाना भी उन्हें अपना अपमान प्रतीत होता था।

अस्तु, इब्राहीम अली आदिलशाह स्वर्गीय बन्दानवाज़ गेसूदराज़ का भक्त था और उनकी समाधि की प्रशंसा में काव्य-रचना करता था, तो अकबर को इसी परम्परा के चिश्ती सन्त सीकरी-निवासी शेख़ सलीम के चरणों में भक्ति थी। अकबर और इब्राहीम आदिलशाह में एक सम्बन्ध यह भी था।

अकबर सूर्यपूजक हो गया था, और इब्राहीम अपने गेय गीतों के संग्रह का मंगलाचरण सरस्वती की स्तुति से करता था।

अकबरी दरबार में रचित 'रागसागर' में रागों के ध्यान हैं, तो इब्राहीम के ग्रन्थ नवरस में राग-रागिनियों के शब्दचित्र हैं और कुछ लोगों की दृष्टि में राग-रागिनियों के चित्रों से युक्त 'रागमालाओं' का प्रवर्तक इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय है।

'बसातीन-उस्सलातीन' नामक ग्रन्थ के अनुसार इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय के दरबार में चार सहस्र संगीतज्ञ थे, जिनमें चौदह सौ शिक्षक एवं अवशिष्ट विद्यार्थी थे।

इब्राहीम आदिलशाह का संगीत-गुरु बख़्तरखाँ (तानसेन का शिष्य बख़्तखाँ) था, जिसे सुलतान ने अपनी भतीजी ब्याह दी थी। इब्राहीम आदिलशाह ने बख़्तखाँ को राजदूत बनाकर जहाँगीर की सेवा में भेजा था। सुलतान की वीणा का नाम मोतीख़ान था, जिसकी सवारी हाथी पर निकलती थी।

राग-विबोधकार सोमनाथ इब्राहीम आदिलशाह का समसामयिक था। इब्राहीम ने 'किताबे-नवरस' में भोपाली, रामक्री, भैरव, हजीज़, मारू, आसावरी, देसी, पूरबी, बरारी, टोड़ी, मलार, गौरी, कल्याण, घनाश्री, कानरा, केदार तथा नौरोज़ का प्रयोग करते हुए इन्हें 'मक़ाम' कहा है। 'मक़ाम', 'संस्थान', 'मेल' और 'थाट' समानार्थवादी शब्द हैं।[13]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सन्दर्भ

1. ख़्वाजा हसन निज़ामी, पृ. 303-304
2. नसीरुद्दीन हाशमी, पृ. 21
3. ए फॉरगोटन एम्पायर, पृ. 33-39
4. हाशमी, पृ. 24
5. मध्ययुग का इतिहास, पृ. 377
6. ए फॉरगोटन एम्पायर, पृ. 53-54, 60-61
7. मध्ययुग का इतिहास, पृ. 379
8. मध्ययुग का इतिहास, पृ. 377
9. रूपरस, पृ. 5, ले. जावेद वाशिष्ठ
10. वही, पृ. 40-41
11. वही, पृ. 42-52
12. वही, पृ. 145
13. विशेष विवरण के लिए देखिए 'किताबे नवरस', प्रकाशक, भारतीय कला-केन्द्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुगल सम्राट् और संगीत

बाबर (रा. का. 1526-1530 ई.)

सम्राट् बाबर केवल संगीतानुरागी ही नहीं, संगीत-मर्मज्ञ भी था। उसने अपने सम्बन्धी सुलतान हुसेन मिर्ज़ा के कलाकारों की जो चर्चा की है, उसका निष्कर्ष यह है—

1. ख्वाजा अब्दुल्लाह मरवारीद (गायक एवं कानूनवादक)
2. क़ुले मुहम्मद ऊदी (बरबतवादक और गिटारवादक)
3. शैख़ी नाई (नै बजानेवाला, बरबत और गिटार भी बजा लेता था, वीणा-वादन बाल्य-काल से ही करने लगा था।)
4. शाह क़ुली (गिटारवादक)
5. हुसेन ऊदी (बरबतवादक)
6. ग़ुलाम शादी (गायक)
7. मीर अंजू (गायक)
8. बनाई (गायक)

क़ुले मुहम्मद ऊदी ने बरबत में तीन तारों की वृद्धि की थी, वह प्रारम्भिक राग अच्छे ढंग से गाता-बजाता था। क़ुले मुहम्मद की अपेक्षा शैख़ी नाई अच्छा था और उसने संगीत-रचनाएँ भी की थीं। शाह क़ुली ने अनेक धुनों और रागों का आविष्कार किया था। ग़ुलाम शादी ने लोकप्रिय रागों और धुनों का आविष्कार किया था और बनाई ने भी।[1]

शेख़ घूरन की गणना बाबर के बड़े भारतीय अमीरों में थी। ये संगीत में अत्यन्त निष्णात थे। उन्होंने ज्वराक्रान्त होने पर बीस दिन का उपवास किया। शेख़ अदहन की सम्मति से एक संगीत-गोष्ठी आयोजित की गयी। गाने के प्रभाव से शेख़ घूरन के नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी और वे नीरोग हो गये।

एक गोष्ठी में जब अनेक गायक-वादक गा-बजाकर थक गये और श्रोताओं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर कोई प्रभाव न हुआ, तब शेख़ घूरन ने ऐसा गाया कि सभी रोते-रोते वेहाल हो गये, अनेक सूफ़ी भी उपस्थित थे।[2]

अवसर मिलने पर यात्रा में भी वावर पान-गोष्ठियों का आयोजन करता और संगीत भी सुनता था। 14-11-1519 ई. को उसने यात्रा में रवाव सुना और हुलहुल अनीगा नामक नारी के साथ एक गोष्ठी में मदिरापान किया था।[3] वह भारतीय पातुरों (वेश्याओं) का नाच भी देखता था।[4]

वावर और इब्राहीम लोदी के पारस्परिक संग्राम के परिणाम का वर्णन 'तारीख़े दाऊदी' के अनुसार किसी प्रत्यक्षदर्शी ने इस भाषा में किया था।

नौ से ऊपर हता वतीसा। पानीपत में भारत दीसा।
सातवीं रजब आपत डारा। बाबर जीता बराहम हारा।।[5]

उस युग की गेय रचनाएँ भी प्राय: ऐसी ही लोक-भाषा में थीं।

हुमायूँ (रा. का. 1530-1556 ई.)

हुमायूँ को संगीत-प्रेम अपने पिता से दाय में मिला था। सुन्दर, सलोने, रूपवान् संगीतज्ञ तथा अच्छे स्वर में काव्य-पाठ करनेवाले लोग 'क़ानूने हुमायूनी' के अनुसार 'अहले मुराद' कहलाते थे, क्योंकि लोगों की अभिलाषा यही होती है कि वे रूपवान् तरुणों और मधुरकण्ठ गायकों से सम्पर्क रखें। चंग, क़ानून और बरबत जैसे वाद्यों की ध्वनि सभी के लिए रुचिकर होती है।[6]

सोमवार और बुधवार 'मुराद' (मनोरथ) के दिन कहे जाते थे। हुमायूँ सोमवार और बुधवारको गाना सुनता था। विशिष्ट लोगों को दरवार में बुलाकर उनके मनोरथ की सिद्धि करता था।[7]

'अहले मुराद' से सम्बद्ध विभाग का अध्यक्ष विद्वान् धर्म्मनिष्ठ और वादशाह का सखा होता था।[8]

हुमायूँ के गायकों और वादकों की सूची इस प्रकार है—

1. मीर सैयद अली ग़िज़कवादक
2. बाबा दोस्त तूनक़तार
3. जान मुहम्मद अरलात
4. यार मुहम्मद
5. बहराम ग़िज़कवादक
6. तूफ़ान रवाववादक
7. मुल्ला ताहिर बुखारी
8. मस्तूर बेग वक़ावल
9. रहमान क़ुली ख़ुशवेगी
10. ईरज तरसून बरलास
11. वायज़ीद क़रनावादक
12. मुहम्मदजान क़ानूनवादक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

13. कजक गिचकवादक
14. क़ासिम चंगवादक
15. ग़ैबुल्लाह चंगवादक
16. मुख़लिस कुब्सी
17. तूफ़ान नैवादक
18. अरबे बई
19. हाफ़िज़ सुलतान मुहम्मद आख़्ता
20. हाफ़िज़ कमालुद्दीन हुसेन
21. हाफ़िज़ मेहरी बकावली
22. हाफ़िज़ नासिर
23. मौलाना सिपहरी
24. ख़्वाजा मुहिब अली बख़्शी
25. मौलाना बज़्मी
26. मौलाना मीर जान पैवन्दी ज़र्वज़न
27. महमूद किरकीराक़
28. साक़ी दराज़
29. तरसून अली करावल[9]

1535 ई. में हुमायूँ ने मांडौ पर अधिकार किया। उस समय मानसिंह तोमर के सहायक और बहादुरशाह के आश्रित गायक बैजू एक मुग़ल के हाथों बन्दी हो गये। हुमायूँ की ओर के एक राजपूत ने बैजू को पहचानकर उनकी रक्षा की। बैजू हुमायूँ की सेवा में पहुँचाये गये। बैजू से गाना सुनकर हुमायूँ के हृदय में इतनी करुणा उमड़ी कि उसने क़त्ले-आम बन्द करा दिया और कहा कि बैजू जिन बन्दियों को छुड़ाना चाहें, छुड़ा लें। बैजू कुछ दिनों हुमायूँ के पास रहे और अवसर मिलते ही भागकर बहादुरशाह की सेवा में पहुँच गये। हुमायूँ ने खेदपूर्वक कहा कि यदि हमारी सेवा में रहता, तो सुलतान बहादुर को भूल जाता।[10]

अकबर (रा. का. 1556-1605 ई.)

राजस्थान के अमरकोट नामक दुर्ग में 23 नवम्बर 1542 ई. को अकबर का जन्म हुआ। हुमायूँ की मृत्यु के पश्चात् कलानौर नामक स्थान पर 14 फरवरी, 1556 ई. को जब अकबर का राज्याभिषेक हुआ, तब उसकी आयु केवल तेरह वर्ष थी। हुमायूँ का योग्य सेनापति बैरमख़ाँ ख़ानख़ाना अकबर का योग्य अभिभावक था।

1560 ई. से 1564 ई. तक अकबर अपनी धाय माहम अनगा और उसके साथियों के प्रभाव में था। इसी दल के प्रयत्न से बैरमख़ाँ का पतन हुआ। गुजरात के पाटन नामक नगर में एक अफ़ग़ान ने बैरमख़ाँ की हत्या 1561 ई. में कर डाली। इस समय अकबर केवल उन्नीस वर्ष का था।

1562 ई. में ज़ैनख़ाँ नामक एक गायक ने अकबर की सेवा में निवेदन किया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कि तानसेन रीवाँ नरेश राजा रामचन्द्र के आश्रित है। वह युग का अप्रतिम गायक है, उसे मुग़ल दरबार की शोभा बनाना चाहिए।[11] अकबर ने जलालखाँ कूर्ची को एक सेना लेकर राजा रामचन्द्र की ओर भेजा। न तो राजा रामचन्द्र तानसेन को स्वयं से पृथक् करना चाहते थे और न तानसेन मुग़लदरबार में आना चाहते थे, परन्तु 'जिसकी लाठी उसकी भैंस'। तानसेन को अनिच्छापूर्वक दरबार में आना पड़ा।[12]

राजहठ और बालहठ प्रसिद्ध हैं, इस समय अकबर राजा था और बीस वर्ष का बालक भी। राजा रामचन्द्र उसके सम्मुख झुकने के लिए विवश हुए।[13]

बीस वर्ष का बालक संगीत-मर्मज्ञ तो क्या हो सकता था, परन्तु 'रत्न राजा के पास होना चाहिएँ' इस कहावत के अनुसार बादशाही शान बढ़ाने के लिए तानसेन मुग़ल दरबार में लाये गये थे। अबुल फ़ज़्ल के अनुसार अपने विनम्र और सरल स्वभाव के कारण तानसेन ने अकबरी दरबार के कलाकारों में मूर्धन्य स्थान प्राप्त किया। 'इकबालनामः जहाँगीरी' के अनुसार तानसेन ने स्वरचित अनेक ध्रुवपदों में रचयिता के स्थान पर अकबर का नाम डाल दिया।[14]

तानसेन से सन्तुष्ट होकर अकबर ने उन्हें 'कण्ठाभरणवाणीविलास' उपाधि से सम्मानित किया था।[15]

अकबरी दरबार के प्रमुख कलाकारों में तानसेन, रामदास, सुबहानखाँ, सुरज्ञानखाँ, मियाँ चाँद, विचित्रखाँ, वीरमण्डलखाँ, सरोदखाँ, मियाँलाल, चाँदखाँ और वीणावादक शहाबखाँ ग्वालियर के निवासी और मानसिंह परम्परा अथवा बैजू की परम्परा के अनुवर्ती थे।

अकबरी दरबार के गुणियों में अनेक व्यक्ति मशहद और हिरात जैसे स्थानों के निवासी थे, जो मुस्लिम संगीत के मर्मज्ञ थे।

अकबरी दरबार के सम्पर्क में आनेवाले पण्डितों के वर्ग में वे दाक्षिणात्य संगीत-ग्रन्थकार भी थे, जिनकी परम्परा उस मेल-सिद्धान्त का अनुवर्तन करती थी, जिसका मूल ईरानी मुक़ाम-सिद्धान्त में था। पुण्डरीक विट्ठल इसी वर्ग के पण्डित थे।

अकबर के दरबार में 'रामसागर' नामक ग्रन्थ का प्रणयन हुआ, जिसमें मेल-पद्धति की भी चर्चा है और राग-रागिनी के ध्यान भी हैं।

अकबर अत्यन्त मेधावी और कुशल व्यक्ति था। विद्वानों और गुणियों के संसर्ग से उसकी जन्मजात प्रतिभा का अद्भुत विकास हुआ था। उसी की प्रेरणा से राग-सम्बन्धी अनेक प्रयोग उसके गुणियों ने किये।

वर्तमान 'तोड़ी ठाठ' की चर्चा सोमनाथ रचित 'रागविबोध' (रचनाकाल 1609 ई.) से पूर्व के किसी ग्रन्थ में नहीं मिलती, यहाँ तक कि पुण्डरीक के ग्रन्थ 'षड्रागचन्द्रोदय' और 'राग-मंजरी' भी इस ठाठ की चर्चा से शून्य हैं। 'मियाँ की तोड़ी' के नाम से आज जो राग गाया जाता है, उसके स्वर भरत और शार्ङ्गदेव की किसी मूर्च्छना में उपलब्ध नहीं होते, अतः यह प्रतीत होता है कि इस ठाठ के स्वरों में तोड़ी राग का प्रयोग सबसे पहले अकबर के दरबार में हुआ और यह राग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मियाँ की तोड़ी कहलाया।

तानसेन की कृति मियाँ की मलार, मियाँ का सारंग, रामदास की कृति रामदासी मलार, चरजू की कृति चरजू की मलार, धोंधू के चिन्तन का परिणाम धोंधू की मलार और सूरदास नामक गायक की रचना सूरदासी मलार जैसे राग अकबरी दरबार की देन हैं।

मियाँ की मलार जैसे रागों का वर्गीकरण मेलों या ठाठों में सम्भव नहीं, रामदासी मलार की भी स्थिति यही है। वास्तव में ऐसे रागों की सृष्टि मुक़ाम-सिद्धान्त के अनुसार सम्भव है। मशहद और हिरात के गुणियों के साथ अकबरी दरबार के कलावन्तों का सम्पर्क ऐसे रागों के निर्माण में सहायक हुआ।

अकबरी दरबार में संगीत-रत्नाकर पर भली-भाँति विचार होता था और तानसेन के कुछ ध्रुवपदों से सिद्ध होता है कि अकबर संगीत-रत्नाकर के रहस्यों को समझने लगा था।

तानसेन के एक ध्रुवपद से ही सिद्ध होता है कि अकबरी दरबार के कलाकार आधुनिक बिलावल को मूल ठाठ मानते थे। यही स्वरावलि 'बुज़ुर्ग' (परम्परागत श्रेष्ठ) मुक़ाम कहलाती थी।[16]

अकबर की सेवा में जौनपुर के शेख़ अदहन का शिष्य शेख़ बंझू नामक एक सुकण्ठ गायक आया था। अकबर ने उसे पुरस्कृत भी किया था। यह गायक सूफ़ी-परम्परा का था।[17] बंझू के गुरु शेख़ अदहन की चर्चा बाबर के प्रसंग में आ चुकी है। अकबर स्वयं शेख़ सलीम चिश्ती का मुरीद था, अतः दीने-इलाही की स्थापना से पूर्व उसकी दृष्टि में सूफ़ियों का पर्याप्त सम्मान था।

अबुल-फ़ज़्ल ने अकबरी युग के संगीत के विषय में 'आईने अकबरी' में पर्याप्त रूप से लिखा है।[18]

जहाँगीर (रा. का. 1605-1627 ई.)

अकबर का पुत्र सलीम छत्तीस वर्ष की आयु में सम्राट् हुआ। इसकी रुचि अत्यन्त परिष्कृत थी। यह ध्रुवपद-गायकों को भी पसन्द करता था और ग़ज़ल-गायक भी इसे प्रिय थे, क़व्वाली सुनने का शौक भी जहाँगीर को था।

तानसेन के छोटे पुत्र बिलास ख़ाँ, छतर ख़ाँ, ख़ुर्रमदाद मक्खू और हमजान जहाँगीरी दरबार के प्रसिद्ध कलाकारों में थे।

शौकी नामक ग़ज़ल-गायक को जहाँगीर ने 'आनन्द ख़ाँ' उपाधि दी थी।[19]

जहाँगीर ने उस्ताद मुहम्मद को रुपयों से तुलवाया और हौदे सहित हाथी दिया था।[20] इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय के संगीत-गुरु एवं राजदूत बख़्तर ख़ाँ को जहाँगीर ने एक मुक्तामाला और दस सहस्र हाथी दिये थे।[21]

एक ध्रुवपद में जहाँगीर को संगीत के अंग-अंग में निपुण तथा भरत एवं मतंग के मतों में छानबीन करनेवाला बताया गया है।[22]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शाहजहाँ (1627-1658 ई.)

शाहजहाँ अत्यन्त रसिक और संगीत-मर्मज्ञ था। प्रतिदिन अन्तःपुर में साढ़े आठ बजे से दस बजे तक गायिकाओं के संगीत का आनन्द लेता था।

विलास खाँ के दामाद लाल खाँ को 1630 ई. में शाहजहाँ ने 'गुनसमन्दर खाँ' उपाधि दी थी। गुनसमन्दर खाँ के पुत्र ख़ुशहाल खाँ और बिसराम खाँ, रंग खाँ कलावन्त, किशन खाँ कलावन्त और जगन्नाथ कविराय शाहजहाँ के आश्रित थे।[23]

खुशहाल खाँ और विसराम खाँ ने महामन्त्री अलीमर्दान खाँ से एक लाख रुपये रिश्वत में लेकर शाहजहाँ के सम्मुख ऐसी तोड़ी गायी कि शाहजहाँ मन्त्र-मुग्ध हो गया और उसने एक आज्ञापत्र पर बिना पढ़े हस्ताक्षर कर दिये, जिसके अनुसार मुर्शिद क़ुली खाँ को औरंगज़ेब के साथ दक्षिण जाना था। वास्तव में शाहजहाँ मुर्शिद क़ुली खाँ को दारा के साथ रखना चाहता था। षड्यन्त्र का ज्ञान होने पर खुशहाल खाँ को दण्ड मिला और वे दरबार में आनुवंशिक स्थान से वंचित कर दिये गये।[24]

शाहजहाँ की मुद्रा से अंकित ध्रुवपद वास्तव में खुशहाल खाँ की रचनाएँ हैं।

शाहजहाँ ने अपने युग में प्रचलित उन सहस्र ध्रुवपदों का संग्रह कराया, जो वरुशू की कृति हैं। यह संग्रह अत्र संगीत-नाटक एकेडमी से प्रकाशित हो चुका है और डॉ. प्रेमलता शर्मा ने इसे योग्यतापूर्वक सम्पादित किया है।

शाहजहाँ की संगीत-मर्मज्ञता का वर्णन करनेवाले ध्रुवपद प्राप्त हैं।[25]

औरंगज़ेब (रा. का. 1659-1707 ई.)

24 अक्तूबर, 1618 ई. को औरंगज़ेब का जन्म हुआ और 13 मई, 1659 ई. को यह सम्राट् हुआ, इस समय यह इकतालीस वर्ष का था।

18 वर्ष की आयु तक इसका जीवन मुग़ल-अन्तःपुर के विलास-प्रधान वातावरण में बीता। संगीतकला-विशारदा एक दासी हीराबाई इसकी प्रेमिका थी, जो ज़ैनाबादी बेगम कहलाई। औरंगज़ेब इसे अपने हाथ से शराब का प्याला देता था। यह अपने यौवनकाल में ही मर गयी। इसकी क़ब्र औरंगाबाद में है।[26]

शाहज़ादा कामबख़्श की माँ खूब शराब पीती थी। यह औरंगजेब पर उसके जीवन के अन्तिम क्षणों तक शासन करती रही।[27]

सम्राट् होने पर आठ-नौ वर्ष तक औरंगजेब संगीत का आनन्द लेता रहा। औरंगज़ेब की मुद्रा से अंकित अनेक ध्रुवपद प्राप्त होते हैं, जिनके विषय शोभा, प्रताप, वर्षगाँठ, होली और नायिका-भेद हैं।[28]

खुशहाल खाँ, बिसराम खाँ, रसबैन खाँ, हयात सरसनैन, सुख़ीसेन कलावन्त और किरपा 'मृदंगराय' औरंगज़ेब के कृपापात्र कलाकार थे। खुशहाल खाँ को 'गुनसमन्दर खाँ' और किरपा को 'मृदंगराय' उपाधि औरंगज़ेब ने ही दी थी।[29]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

औरंगज़ेब के वेतन-भोगी कर्मचारी मिर्ज़ा रोशनज़मीर ने अहोवल के 'संगीत-पारिजात' का अनुवाद 1666 ई. में किया।[30] फ़क़ीरुल्लाह ने औरंगज़ेब को ही समर्पित करने के लिए 'रागदर्पण' के नाम से 'मानकुतूहल' का अनुवाद किया। इसी युग में इवाद मुहम्मद कामिल ख़ानी ने 1667 ई. में 'रिसालाए कामिल-ख़ानी', 1668 ई. में 'असामीसुर' और 1669 ई. में 'रिसाला दर अमलेबीनो ठाठ रागिनी' की रचना की। ये तीनों ग्रन्थ रामपुर की रज़ा-लायब्रेरी में विद्यमान हैं।

1667-1668 ई. में औरंगज़ेब ने आदेश दिया कि गायक लोग दरबार में आयें, परन्तु गाना न गायें। इस आदेश के कारण विशुद्ध राजनीतिक थे। इटालियन इतिहासकार मनुक्कि के अनुसार इस प्रतिवन्ध के पश्चात् भी औरंगज़ेब वेगमों और शाहज़ादियों के मनोरंजन के लिए गायिकाओं और नर्तकियों की नियुक्ति करता था और अन्तःपुर में गाना-बजाना होता था।[31]

बहादुरशाह (1707-1712 ई.)

औरंगज़ेब के पुत्र और उत्तराधिकारी इस सम्राट् का वास्तविक नाम मुअज़्ज़म था। 'रागमाला' नामक ध्रुवपद-संग्रह में इसके नाम से अंकित ध्रुवपद प्राप्त होते हैं।

नेमत ख़ाँ 'सदारंग' इसकी सभा में थे, वे तत्कालीन अनेक गुणियों के शिष्य थे। महाकवि देव भी सदारंग के गुरु थे।[32]

जहाँदारशाह (1712-1713 ई.)

इसने केवल ग्यारह महीने राज्य किया। लालकुँवरि नामक नर्तकी इसकी प्रियतमा थी, जिसके सम्बन्धियों को उच्चपद दिये गये।

मुहम्मदशाह रंगीला (1719-1748 ई.)

अपने संगीतानुराग के कारण ही यह रंगीला कहलाता था। नादिरशाह ने 1739 ई. में जब दिल्ली पर प्रसिद्ध आक्रमण किया, तब रंगीले का ही शासन था।

1738 ई. में हैदराबाद के प्रथम निज़ाम के साथ हैदराबाद के एक अमीर नवाब दरगाह क़ुली ख़ाँ भी दिल्ली आये थे, उन्होंने नादिरशाही युग के कलाकारों, रसिकों और सूफ़ियों का इतिवृत्त लिखा है।[33]

मुहम्मदशाह के युग में गायकों के दो प्रमुख वर्ग 'कलावन्त' और 'क़व्वाल' थे। उस युग का रसिक-समाज कवित्त, ख़याल और क़व्वाली पसन्द करता था। भाव और प्रभाव की ओर उस युग के श्रोता की दृष्टि थी। नयी रचनाओं का आदर किया जाता था। गायिकाएँ और नर्तकियाँ विद्वानों से विधिवत् अलंकारशास्त्र का भी अध्ययन करती थीं। नायिका-भेद भलीभाँति समझा जाता था।

उस युग में नेमत ख़ाँ सदारंग, नेमत ख़ाँ के छोटे भाई ख़ुसरो ख़ाँ (सितार के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आविष्कारक), ताज़ ख़ाँ (क़व्वाल), ताज़ ख़ाँ के पुत्र जानी और ग़ुलाम रसूल, वाक़र (तम्बूरावादक), हसन ख़ाँ (रबाबवादक), ग़ुलाम मुहम्मद (सारंगीवादक), रहीम और तानसेन (मियाँ तानसेन के वंशज ध्रुवपद-गायक और कवित्त-गायक), कासिमअली (सदारंग का शिष्य वीणावादक), मुईनुद्दीन क़व्वाल, बुरहानी क़व्वाल, बुरहानी अमीर ख़ाँ, रहीम ख़ाँ जहानी (ख़याल-गायक), शुजाअत ख़ाँ (कवित्त गायक), इब्राहीम ख़ाँ, सवाद ख़ाँ, बोले ख़ाँ, घासीराम पखावजी, हुसेन ख़ाँ (ढोलकवादक), थन्ना (ढोलकवादक हुसेन ख़ाँ का शिष्य), शहबाज़ (धमधमीवादक), शाह दरवेश घटवादक, अन्धा (पेट बजानेवाला), शाह दानियाल (कवित्त-गायक, ख़याल-गायक), ख़वासी और अनूठा (ख़याल-गायक एवं नर्तक), सब्ज: और मज: (नर्तक), यारी (नक़्क़ाल), अबुलहसन की प्रेयसी (नर्तकी, कवित्त-गायिका, ख़याल-गायिका), जट्टा (क़व्वाल), रहीम ख़ाँ, ग्यान ख़ाँ, दौलत और हड्डू (चारों मर्मज्ञ ख़याल-गायक एवं वादक), अल्लाहबन्दे (क़व्वाल और ख़याल-गायक), रजी (सदारंग की रचनाएँ गानेवाला), हींगा (नर्तक), सुलताना (नर्तक), दरगाही (मंजीरावादक), एक चंगवादक, सरस रूप (नर्तक या नर्तकी), नूरबाई (दिल्ली की प्रसिद्ध डोमनी गायिका), चमनी (निपुण एवं प्रौढ़ संगीतज्ञा), उमर बेगम (नर्तकी), मनिया (ऐतमादुद्दौला की प्रेयसी), रामजनी (मर्मज्ञ गायिका), मानी चकमक (निपुण गायिका), काले कंका (नर्तक), ज़ीनत और भज्जी (गायिका और नर्तकी), गुलाब (रूपवती गायिका), रमज़ानी (वृद्ध गायक), रहमानबाई (नर्तकी), पन्नाबाई (सदारंग की शिष्या गायिका, नवीन रागों के आविष्कार में निपुण), कमालबाई (सम्राट् की प्रेयसी, रंगीले की मुद्रा से अंकित सदारंग की रचनाओं के गाने में निपुण मर्मज्ञ गायिका), उमाबाई (कवित्त-गायिका, ख़याल-गायिका) कुँवर (गायिका, उमा की पुत्री), पन्ना और तन्नो (गायिका और नर्तकी) पर नवाब दरगाह क़ुली ख़ाँ ने टिप्पणियाँ लिखी हैं।

कला की दृष्टि से मुहम्मदशाह रंगीले के युग के पश्चात् श्रेष्ठ ध्रुवपद-रचयिता और मर्मज्ञ गायक होने बन्द हो गये।

रंगीले के युग में मजनूँ नानकशाही, शाह कमाल और शाह रहमतुल्लाह संगीतानुरागी थे।

अहमदशाह (1748-1854 ई.)

सुरभावन और आलम द्वारा रचित ध्रुवपदों में अहमदशाह की चर्चा है।[34]

आलमगीर सानी (1754-1759 ई.)

इसकी चर्चा से युक्त दो-एक ध्रुवपद 'रागमाला' में मिलते हैं।

शाह आलम (1759-1806 ई.)

इन्होंने गेय रचनाएँ लिखी हैं जो रज़ा-लायब्रेरी रामपुर से 'नादिरातिशाही' के नाम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से प्रकाशित हुई हैं। ये उस्ताद नज़र अली के शिष्य थे।[35] सुरभावन के ध्रुवपदों में इनकी भी चर्चा है।

अकबर द्वितीय (1806-1827) और बहादुरशाह (1827-1862 ई.) के दरबार संगीत की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं। उस समय दिल्ली के कलाकार रामपुर, हैदराबाद, लखनऊ, बनारस तथा अन्य राज्यों में आश्रय के लिए चले गये थे।

सन्दर्भ

1. मुगलकालीन भारत, बाबर, पृ. 595-596
2. वही, पृ. 440
3. वही, पृ. 127
4. वही, पृ. 295
5. वही, पृ. 447
6, मुगलकालीन भारत, हुमायूँ, पृ. 389
7. वही, पृ. 290
8. वही, पृ. 292
9. वही, पृ. 846-847
10. मिराति सिकन्दरी, पृ. 249, खुला सतुल्ऐश आलमशाही, पृ. 146, मिराति आफ़ताबनुमः, पृ. 389 अ, गुंचरु राग, पृ. 40, सौतुल्मुबारक, पृ. 100, सरभाय इशरत, पृ. 317, 'आजकल' उर्दू अगस्त 1956, पृ. 104 पर मौलाना अर्शी द्वारा उद्धृत, देखिए संगीत चिन्तामणि, पृ. 421
11. आजकल 'उर्दू', अगस्त 1956, पृ. 92
12. मुन्तख़बुत्तवारीख, खंड 2, पृ. 345
13. अकबरनामा, पृ. 279
14. तुजुके जहाँगीरी, खड 1, पृ. 413
15. सहसरस की भूमिका, पृ. 12
16. संगीत-चिन्तामणि, पृ. 254
17. मुन्तखबुत्तवारीख़, खण्ड 2. पृ. 273
18. देखिए ब्लाक मैन कृत अनुवाद, द्वितीय खण्ड, पृ. 445-680, ग्लैडविन कृत अनुवाद पृ. 130-732-734। अकबरनामा, बेबीरज कृत अनुवाद, खण्ड 2, पृ. 133-135, 279, 880। मुन्तख़बुत्तवारीख़, डब्ल्यू. एच. लो का अनुवाद, खण्ड 2, पृ. 37, 223, 345
19. जहाँगीरनामा, पृ. 396
20. वही, पृ. 439
21. वही, पृ. 399
22. रागमाला, 86 भ; संगीत-चिन्तामणि, पृ. 326
23. 'आजकल', अगस्त 1956, संगीत-चिन्तामणि, पृ. 327
24. मिराति आफ़तावनुमा, पृ. 390 ब; संगीत-चिन्तामणि, पृ. 327
25. रागमाला, 110 अ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

26. औरंगज़ेब, पृ. 20
27. मआसिरुल् उमरा, भाग 3, पृ. 123
28. संगीत-चिन्तामणि, पृ. 288-292
29. वही, पृ. 329
30. रामपुर की रज़ा-लायब्रेरी में यह विद्यमान है। संगीत-पारिजात का यह अनुवाद 1077 हिजरी अर्थात् 1666 ई. में हुआ। रामपुर की प्रति मूल अनुवाद की प्रतिलिपि है, जो अठारहवीं शती में की गयी है। भातखण्डेजी को अनुवाद के वास्तविक वर्ष का ज्ञान न होने के कारण उनके द्वारा अहोबल के काल का निर्धारण होने में भूल हुई है। वे प्रतिलिपि-काल को अनुवाद-काल समझ गये हैं।
31. मुग़ल राजमहलों का जीवन, पृ. 23
32. संगीत-चिन्तामणि, पृ. 330
33. इस इतिवृत्त का संक्षिप्त उर्दू अनुवाद मौलाना हसन निजामी ने 'पुरानी दिल्ली के हालात' शीर्षक से किया है, प्रकाशन भी उन्हीं के द्वारा 1933 में हुआ है। इस युग के विशेष विवरण के लिए वह पठनीय है। 'संगीत' (हाथरस) अगस्त 1969 में प्रकाशित 'सदारंग और उनके युग के दिल्लीवासी कलाकार' नामक लेख भी इस सम्बन्ध में पठनीय है।
34. संगीत-चिन्तामणि, पृ. 331
35. नादिरातिशाही की भूमिका, संगीत-चिन्तामणि, पृ. 332

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वाजिदअली शाह के युग का संगीत

मुग़ल-साम्राज्य का प्रताप क्षीण होने के पश्चात् गायकों, वादकों और नर्तकों को अवध की नवाबी ने आश्रय दिया। 1855 ई. में मुहम्मद करम इमाम ने 'मअदन-उल्-मूसिक़ी' नामक पुस्तक लिखी, जिसमें उसने समसामयिक कलाकारों की चर्चा की है। पुस्तक का यह अंश ऐतिहासिक दृष्टि से बहुमूल्य है।

मुहम्मद करम इमाम के पूर्वज 'ग़ोर' के निवासी थे। उनमें से मुहम्मद ग़ौस अली ख़ाँ को सम्राट् अकबर ने अवध के एक परगने झलोतर का चौधरी नियुक्त किया था। इस वंश के मुहम्मद ज़ोरावर अली ख़ाँ आसफ़ुद्दौला के युग में उनाम नामक क़स्बे में निवास करने लगे। इसी वंश के मुहम्मद दिलावर अली ख़ाँ मुहम्मद करम इमाम के पिता थे।

मुहम्मद करम इमाम को नवाब हुसेन अली ख़ाँ, सैयद मीर अली, शिकोहाबाद के रईस सैयद ग़ुलाम अब्बास, बाँदा के नवाब ज़ुल्फ़िक़ार अली ख़ाँ इत्यादि के सत्संग का तो अवसर प्राप्त हुआ ही था, अपने युग के सभी प्रमुख कलाकारों को सुनने का भी अवसर मिला था।

अपने युग के विषय में मुहम्मद करम इमाम की सम्मति कुछ बहुत अच्छी नहीं थी, उसका कथन है कि जो गाना प्रभावपूर्ण था, वह अज्ञान के कारण सर्वथा लुप्त हो गया, केवल खयाल, ध्रुवपद, होली, सरगम गाना किसी हद तक बच रहा है, वह भी कहीं-कहीं। जैसा कि होना चाहिए, वैसा तो स्वप्न हो गया है। उस गाने के क़द्रदान भी नहीं रहे। हिन्दी की ग़ज़ल, ठुमरी, दादरा, नकटा ही सुना जाता है। रही ठुमरी, वह भी निरर्थक। खेद है कि अब रईसों की तबियत ऐसी हो गयी है। बस पहरों इसी बेहूदगी की मार है, उस पर शैतान की फटकार है। अफ़सोस! 'आदमियान गुम शुदन्द, मुल्के खुदा गिरफ़्त' (मनुष्य लुप्त हो गये, ईश्वरीय सृष्टि गधों के आधीन हो गयी।) इस युग में भी शिष्ट और भद्र व्यक्ति ऐसी बेहूदगी से दूर रहते हैं, परन्तु ढारी, सफ़रदाई और तवायफ़ें कब छोड़ती हैं। अगर हम जैसे देहाती तवायफ़ों के गाने में जा पड़े अथवा किसी बारात इत्यादि में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संयोगवश आ फँसे, तो मानो क़ाज़ी के आदेश के बिना ही उनकी मृत्यु आ पहुँची। …जिस युग के अमीर और रईस राग को खटराग मानने लगें, उस युग के गायक-वादक क्या करें।

मुहम्मद करम इमाम का कथन है कि मुहम्मद शाह रँगीले का दरबार यद्यपि राजकीय शिष्टाचार से शून्य था, तथापि इस युग की अपेक्षा ग़नीमत था।

मुहम्मद करम इमाम का सम्पर्क, सम्भवतः पण्डितों के साथ नहीं था, इसीलिए उन्होंने भरत मुनि को 'दशरथ-पुत्र भरत' और संगीत-रत्नाकार के प्रसिद्ध टीकाकार कल्लिनाथ को 'काली नाग का नाथनेवाला कन्हैया' समझा है।

अस्तु, कुछ भी हो, अपने युग के आश्रयदाताओं और कलाकारों के विषय में मुहम्मद करम इमाम ही एकमात्र साक्षी है।

उस युग में रीवाँ-नरेश विश्वनाथसिंह, काशी-नरेश महाराज उदितनारायण, चरखारी-नरेश राजा रतनसिंह, रामपुर-नरेश नवाब अहमद अली खाँ और अवध के नवाब वाजिदअली शाह गुणी और गुण-ग्राहक थे।

मुहम्मद करम इमाम ने मियाँ जानी और ग़ुलाम रसूल की बहुत प्रशंसा की है और इनके गाने को प्रभावपूर्ण बताते हुए इस घटना का वर्णन किया है कि एक दिन ख़्वाजा बासत साहब के टीले पर वसन्त के दिन जनाब मीर अली के सामने श्रोताओं का अपार समूह था, मियाँ शोरी के पिता ग़ुलाम रसूल बहार का ख़याल 'रँगरलियाँ कलियन संग करत भँवर गुँजार, फूले फुलवारी-चमन और बोलत मोर, कोयल की कूक सुन हूक उठें' गा रहे थे, कि न जाने कहाँ से एक कोयल मियाँ ग़ुलाम रसूल की पगड़ी पर आकर बैठ गयी और 'कू-कू' करती रही। गाना समाप्त होते ही वह कोयल उड़ गयी। उस जलसे में मुहम्मद करम इमाम के पिता दिलावर अली खाँ, मामा शेख़ मुहम्मद स्वलाह और मौलवी अहसानुल्लाह साहब उपस्थित थे।

मियाँ जानी और मियाँ ग़ुलाम रसूल ने आसफ़ुद्दौला की नौकरी इस बात पर छोड़ दी थी कि उनकी दृष्टि में महामन्त्री हसन रज़ा खाँ ने उन्हें उचित सम्मान न दिया था।

मुहम्मद करम इमाम ने अपने पूर्ववर्तियों में शक्कर, मक्खन और सोना जैसे क़व्वाल बच्चों, टप्पे के आविष्कारक मियाँ शोरी, छज्जूखाँ और जीवनखाँ जैसे ध्रुवपद-गायकों और रबाबवादकों, नवाब सालारजंगखाँ और उनके पुत्र नवाब कासिम अली खाँ तथा मियाँ शोरी के शिष्य मियाँ गामू क़व्वाल की अत्यन्त प्रशंसा की है।

अपने समवर्तियों की चर्चा करते हुए मुहम्मद करम इमाम ने कहा है कि छज्जू खाँ के पुत्र प्यार खाँ, बासतखाँ और जाफ़र खाँ उत्तम रबाबवादक थे और बादशाह के उस्ताद थे। रबाब का बजाना इन पर ख़त्म हुआ। इन्होंने एक नवीन वाद्य सुरसिंगार का आविष्कार किया। जाफ़र खाँ गाते भी अच्छा थे।

जाफ़र खाँ की सन्तानों में काज़िम अली खाँ (आरामुद्दौला), सादिक अली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खाँ (राहतुद्दौला), निसार अली तथा एक और पुत्र थे।

प्यारखाँ का भांजा और दत्तक पुत्र बहादुर हुसेनखाँ[1] (ज़ियाउद्दौला) सुर-सिंगार बजाने में अनुपम थे। बादशाह के ये सभी मुसाइव अच्छे थे, हाँ इन्हें अभिमान बहुत था।

जीवनखाँ के पुत्र बहादुरखाँ और हैदरखाँ दोनों उस्ताद थे। ये दोनों महामन्त्री अली नकी खाँ के गुरु थे।

स्व. मुहम्मद अली खाँ बीनकार का पुत्र उमरावखाँ, उस्ताद तुराब अली खाँ, उमराव खाँ का पौत्र और अमीरखाँ का पुत्र रहीमखाँ गाने में उस्ताद था, विनम्र था।

इन लोगों के पूर्वज नवाब शुजाउद्दौला के युग में दिल्ली से फैज़ाबाद, और नवाब आसफ़ुद्दौला के युग में लखनऊ आ गये।

दिल्ली-निवासी तानरस खाँ सरस व्यक्ति थे। ग़ज़ल वग़ैरा बल्कि ख़याल किसी क़द्र अच्छा गाता था।

शाहजहानाबाद-निवासी इमामबख़्श शतायु और विद्वान् था, उसका पुत्र हुसेनखाँ संगीत में शून्य था। उसके दो पुत्र अनाथ होकर आवारा और परेशान थे, परन्तु अच्छे होंगे।

यूसुफ़खाँ और वज़ीरखाँ की पितृ-परम्परा कलावन्तों और मातृ-परम्परा क़व्वाल-बच्चों में है। लखनऊ-निवासी मियाँ शकर इनके नाना और मुहम्मदखाँ इनके मामा हैं। यूसुफ़खाँ और वज़ीरखाँ का गाना छः महीने निरन्तर मुहम्मद करम इमाम ने सुना था। गाने के समय इनकी वाणी और मुद्रा शुद्ध रहती थी। ये दोनों लम्बे-चौड़े कसरती जवान थे, सुन्दर थे, गाने के समय इनका सौन्दर्य द्विगुणित हो जाता था। ये चरखारी-नरेश के नौकर थे, तीनसौ रुपये मासिक वृत्ति थी। नवाब अलीवहादुर ने इनको बाँदा बुलाया था और छः महीने तक गाना सुनने के पश्चात् इन्हें एक हाथी, दो काठियावाड़ी घोड़े, चार फ़र्द दुशाले, आठ शाली रूमाल और पाँच सहस्र रुपये देकर विदा किया था।

दिल्ली-निवासी मौजखाँ ध्रुवपद गाने में अद्वितीय थे।

लखनऊ-निवासी शकर क़व्वाल के पुत्र अहमदखाँ और मुहम्मदखाँ ख़याल गाने में कामिल उस्ताद थे। अहमदखाँ का राग अत्यन्त शुद्ध रहता था। मुहम्मदखाँ, तान, पल्टा, तहरीर, ज़मज़मे में बहुत करारे थे। इन्होंने दक्षिण में ख़याल का सिक्का जमा दिया था। दक्षिणी ढंग से रहते थे, बालों का जूड़ा बंधा रहता था। रीवाँ-नरेश के आश्रित थे, मासिक वृत्ति एक सहस्र रुपये थी। वहीं इनका स्वर्गवास हुआ।

मुहम्मदखाँ का एक पुत्र कुतुबअली पत्नी से था। तीन और पुत्र किसी रक्षिता से थे। कुतुबअली अपने पिता जैसा ही था। अन्य तीन पुत्रों में मुनव्वरखाँ अच्छा गाता था, छोटा लड़का मुरादअली सबसे अच्छा गाता था।

मुहम्मदखाँ के कुटुम्बी लखनऊ-निवासी रजबअली और फ़ज़लअली ख़याल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अच्छा गाते थे। इनका भांजा मेंडू खाँ इनकी शैली से अलग था, उसका जबड़ा हद्दू खाँ की भाँति अच्छा तैयार था।

लखनऊ के ढारी बेहद खब्ती और बेमग़जे (बुद्धिहीन) थे और वेश्याओं के गुरु होने के योग्य थे।

बनारस-निवासी बका और मदारी अच्छे खयालिये थे।

हद्दूखाँ, हस्सूखाँ, नत्थेखाँ और ग़ुलाम इमाम बहुत हट्टे-कट्टे और दबंग थे, अपने सामने दूसरे को कम समझते थे। ये नत्थन पीरबख्श की सन्तानों में थे। हस्सूखाँ और ग़ुलाम इमाम का स्वर्गवास 1855 ई. से पूर्व हो चुका था। हद्दूखाँ को जब करम इमाम ने सुना था, तब हद्दूखाँ के मस्तिष्क में कुछ हल्का-सा विकार आ चुका था।

मेरठ-निवासी शादीखाँ और उनका पुत्र मुरादखाँ अच्छे थे। शादीखाँ खयाल बहुत अच्छा गाते थे। मुरादखाँ ठाह और दून में सरगम अच्छी करता था। उस युग में वैसी सरगम कोई और नहीं करता था।

लखनऊ-निवासी मुरादअली खाँ ढारी का पुत्र और मियाँ रजबअली का शिष्य सुलेमान खयाल एक विशिष्ट शैली में गाता था और तान, पल्टा उससे बहुत अच्छा रहता था।

कालपी-निवासी नूरखाँ और मुग़लखाँ होली अच्छी गाते थे।

दक्षिण-निवासी नूरखाँ चौग़ोशिया होली बहुत अच्छी गाता था। कहा जाता था कि होली उसके साथ ही मर गयी।

तिरहवाँ-निवासी मौजखाँ कलावन्त का भांजा ग़ुलाम रसूलखाँ खयाल बहुत अच्छा गाता था, नेपाल-नरेश के आश्रित था।

गामूखाँ के पुत्र शादीखाँ का बनारस-निवासी शिष्य परशद्दू कत्थक खयाल बहुत अच्छा गाता था, तान, पल्टा, सुर-ब्योरे पर उसका अधिकार था।

शौकीन एवं कुलीन कलाकार

सैयद मीर अली साहब नवाब सआदत अलीखाँ के युग से वाजिदअली शाह के युग तक सरकारी नौकरी में रहे। गाने के हर प्रकार पर इनका अनुपम अधिकार था। ये सदा अपने घर रहे और कभी कहीं न गये। ये पीरज़ादा ख्वाजा बासतखाँ साहब के दौहित्र थे। प्रत्येक सम्राट् ने इनकी उपस्थिति चाही, परन्तु ये अपना मकान छोड़कर कहीं न गये। अतः नसीरुद्दीन हैदर के युग में हकीम मेंहदी अलीखाँ ने इनके वेतन में पाँच सौ रुपये कम कर दिये। कुछ समय पश्चात् इन्हें खिलअत मिली और इनके वेतन में एक सहस्र रुपये की वृद्धि हुई।

बाबू रामसहाय, इलाहाबाद-निवासी, होली, ध्रुवपद, खयाल और टप्पा गाने में एक थे। सैयद मीरअली साहब इन्हें सिद्धान्त और व्यवहार में अनुपम मानते थे।

बाबू रामसहाय के गुरु रामानुज दास और नारायन दास बैरागी खयाल गाने में अनुपम थे। इन दोनों ने ध्रुवपद की शिक्षा छज्जूखाँ के भाई जीवनखाँ से ली।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ये दोनों वैरागी चरखारी-निवासी थे।

नवाब क़ासिम अलीख़ाँ के पुत्र नवाब सुलतान अलीख़ाँ ध्रुवपद गाने में उस्ताद थे। उनके छोटे भाई नवाब हुसेन अलीख़ाँ टप्पा गाने में निष्णात थे।

अज़ीमाबाद-निवासी अमीर अहमद साहब टप्पा ख़ूब गाते थे।

मुहम्मद करम इमाम के पिता मुहम्मद दिलावर अलीख़ाँ होली और धमार ख़ूब बरतते थे।

मुहम्मद करम इमाम के मामा अलीमुल्लाह ख़ाँ ख़याल में मियाँ जानी और ग़ुलाम रसूल के शागिर्द थे। ख़याल गाने पर उनका अधिकार था। इनसे राग शुद्ध रहता था। मर्सिया ख़ूब पढ़ते थे। इनके भाई बशारत अलीख़ाँ ध्रुवपद ख़ूब और ठीक गाते थे। मुहम्मद करम इमाम के छोटे भाई मुहम्मद फ़ज़्ल इमामख़ाँ राग, स्वर और लय में अनुपम थे।

उत्कृष्ट गायिकाएँ

चरखारीवाली बी रहीमनबाई होली और ख़याल सुर-ब्योरे के हिसाब से इतना असाधारण गाती थीं कि उस युग के सभी उस्ताद उनके प्रशंसक थे। मुहम्मद करम इमाम का कथन है कि उसने किसी गवैये को ऐसा न सुना। हद्दू ख़ाँ का कथन था कि इस युग के कलाकारों की अपेक्षा अधिक मर्दानावार काम बी रहीमनबाई करती हैं। पचास वर्ष की आयु में भी ये बाबू रामसहाय से शिक्षा लेती थीं।

रहीमनबाई की छोटी बहन सुन्दरबाई ख़याल ख़ूब गाती थीं। उनसे राग बहुत अच्छा रहता था। सुन्दरबाई से छोटी बहन बी लतीफ़न अत्यन्त रूपवती और नाचने-गाने पर अधिकार रखती थी।

सेढूबाई की बेटी शरफ़ोबाई मुहम्मदख़ानी शैली में ख़याल गाती थी। तान और पलटा बहुत साफ़ और करारा था।

नत्थेख़ाँ की शागिर्द जीसुखबाई बहुत ओजपूर्ण और मर्दाने ढंग से गाती थी। ये बाँदा में तीन सौ रुपये मासिक पर नौकर थी। बाद में चार सौ रुपये मासिक पर रामपुर में नौकर हो गयी। उसके बाद अधिक वेतन पर अलवर चली गयी।

शरफ़ो की दो भतीजियाँ धूमन और हुसेनी ग़ज़ल और ठुमरी गाती थीं।

दक्षिण-निवासिनी कमलाबाई की पुत्री हीराबाई सीधी पटली का ख़याल अच्छा गाती थी। अत्यन्त भद्र और सुकण्ठी थी। बिठूर में नानाराव की नौकर थी।

खजूरबाई सीधा-सादा ख़याल अच्छा गाती थी।

अकबराबाद (आगरा) की ख़ुरशीदबाई ख़याल बहुत अच्छा और सही गाती है, मुहम्मद अली कलावन्त की शिष्या है।

ओनाम निवासिनी बन्दीजान टप्पा बहुत अच्छा गाती है। मुश्किल पेच लगाती है, परन्तु मुद्रा शुद्ध रहती है। मीर रोशन अली की शिष्या है। चार सौ रुपये मासिक पर बिठूर में नानाराव की नौकर थी। नौकरी छोड़कर शाह ख़ादिम सफ़ी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साहब की मुरीद हो गयी। किसी ऐसे व्यक्ति से विवाह की इच्छुक थी, जो संगीत-साधना में भी बाधक न हो और कुलीन हो। अन्त में हिन्दुस्तान के एक शरीफ़ मुसलमान से सम्पृक्त हो गयी।

वन्दीजान की बड़ी बहन हुसेनी भी सुकण्ठी थी। एक अत्यन्त सम्मानित रईस के साथ उसका निकाह हुआ था।

जट्टो कुन्दनलाल पाठक की नौकरी में थी। खयाल और तराना अच्छा गाती थी। इसका नाच भी बहुत खूबसूरत था।

बनारस की चित्रा और इमामबाँदी शादीखाँ की शागिर्द थीं, टप्पा बहुत अच्छा गाती थीं।

फ़र्रुखाबाद की लज्जतबख्श ठुमरी और ग़ज़ल गाने में अच्छी थीं, नाचने में बनारस की गुलबदन और सुखवदन अच्छी थीं।

खुरशीदबाई की छोटी बहन चन्दाबाई लखनऊ के प्रकाश के पुत्र तानसिंह की शिष्या थी और नाचने-गाने में बहुत अच्छी थी।

परगना सिमौनी ज़िला बाँदा की रहनेवाली जानबख्श नाचने में निपुण, शिष्ट और रूपवती थी। बाँदा के नवाब अलीबहादुर की मुलाज़िम थी।

मुहम्मद करम इमाम ने एक भी ऐसे व्यक्ति की चर्चा नहीं की, जो रचना में निपुण हो।

प्रमुख तन्त्रीवादक

उमरावखाँ बीनकार अद्वितीय वादक थे। उनके छोटे भाई मुहम्मद अली बीनकार काशी नरेश के आश्रित थे।

मीर नासिर अहमद साहब सैयद थे, परन्तु बीन की शिक्षा पाने की इच्छा से इन्होंने दिल्ली के कलावन्तों के कुल में विवाह किया और इस विद्या को भली-भाँति प्राप्त किया था। सैर के लिए ये लखनऊ पधारे। सब लोगों के सामने गाया-बजाया, परन्तु सम्राट् के बुलाने पर भी न गये।

उमरावखाँ के पुत्र रहीमखाँ का हाथ भी तगड़ा था। रहीमखाँ के बड़े भाई अमीरखाँ कामिल उस्ताद थे।

हसनखाँ ढारी बीन में सितार का बाज तैयार बजाता था।

प्यारखाँ और बहादुरखाँ रबाब अच्छा बजाते थे।

बहादुर हुसेनखाँ, सादिकअली, काज़मअली और निसारअली की अपेक्षा अच्छा बजाते थे।

ईर्ष्या और विद्या-गोपन भी इस खानदान में बहुत थे। एक बार बहादुर हुसेन खाँ सुरसिंगार बजा रहे थे। उन्होंने एक राग बजाकर अपने दामाद अमीरखाँ से पूछा, तुमको इस राग की शिक्षा है? उन्होंने कहा कि मुझे यह राग नहीं आता। बहादुर हुसेनखाँ ने अमीरखाँ के चचा तुराब अलीखाँ से पूछा। उन्होंने कहा कि पूरिया से मिलता है। बहादुर हुसेनखाँ ने व्यंग्यपूर्वक कहा कि आपकी उस्तादी में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फ़र्क़ नहीं आया, कहने को तो हुआ कि राग बता सके। तुराब अलीखाँ ने बहादुर हुसेनखाँ को एकान्त में ले जाकर उसी राग का एक सोज़ सुनाया, तो बहादुर हुसेनखाँ ने कहा, ईश्वर के वास्ते लड़कों (अमीरखाँ इत्यादि) के सामने इस राग का नाम न लीजिएगा। वह राग पूरिया-विहाग था।

मसीतखाँ के पुत्र रहीमसेन मसीतखानी शैली के उत्तम सितारवादक थे। दिल्ली-निवासी नवाब ग़ुलाम हुसेनखाँ भी इस शैली के अच्छे कलाकार थे।

रज़ाखानी बाज में इस शैली का प्रवर्तक ग़ुलाम रज़ा ही ठीक था। यह शैली उस युग के उस्तादों को पसन्द न थी, वे इसे बेक़ायदा मानते और कहते थे कि इस शैली की गतें तिताले में ठुमरी-अंग पर बँधी हैं। इस शैली में 'ठोक' और 'झाले' के लिए अवकाश नहीं है। इस शैली का आविष्कार लखनऊ के अमीरों के लिए ग़ुलामरज़ा ने किया था।

बाँदा-निवासी ग़ुलाम मुहम्मद ने सितारवादन पर अद्‌भुत अधिकार प्राप्त किया था। इसकी ठोक इतनी प्रचण्ड और स्पष्ट थी कि उमरावखाँ रबाववादक के अतिरिक्त अन्य किसी से न सुनी। ग़ुलाम मुहम्मद का सितार बीन और रबाव से कम न था और अपने युग में वह भारत का अद्वितीय सितारवादक था। इनका लड़का सज्जाद हुसेन भी अच्छा था और बलरामपुर के रईस दुर्गविजय सिंह के आश्रय में था, मासिक वृत्ति दो सौ रुपये थी।

बाबू रामसहाय के पुत्र बाबू ईश्वरीप्रसाद मध्य लय और झाले में बहुत अच्छे थे। इनसे राग बहुत शुद्ध रहता था। ख़याल, होली सरगम और टप्पा भी अच्छा गाते थे।

बनारस-निवासी वाजपेयी दो मिजराबों से सितार बहुत अच्छा बजाता था। हाथ निहायत ख़ूबसूरत था।

फ़र्रुखाबाद-निवासी बरक़त अली उर्फ़ सँवलिया सितार बहुत अच्छा बजाता था। प्यारखाँ का शिष्य था।

फ़र्रुखाबाद के रईस नवाब हश्मतजंग प्यारखाँ के शिष्य थे, सितार अच्छा बजाते थे।

अवध के महामन्त्री नवाब अली नक़ी खाँ हैदरखाँ के शिष्य थे, सितार अच्छा बजाते थे, होली भी ख़ूब गाते थे।

बरेली-निवासी क़ुतुब अली उर्फ़ क़ुतुबुद्दौला प्यारखाँ का शिष्य था। अच्छा सितारवादक था।

पंजाब-निवासिनी अमीरजान गणिका का भाई नबीबख़्श डेरेदार भी अच्छा सितारवादक था, ग़ुलाम मुहम्मद का शिष्य था।

सारंगीवादकों में दिल्ली-निवासी अलीबख़्श, लखनऊ-निवासी हसनबख़्श, ग्वालियर-निवासी साबित अली बहुत अच्छे थे। बाँदा-निवासी इब्राहीमखाँ और मुहम्मद अली भी अच्छे सारंगीवादक थे। बाँदा-निवासी ज़हूरखाँ और लखनऊ-निवासी हसनखाँ ढारी धुन अच्छी बजाते थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अमीरखाँ वीनकार का शिष्य, खुर्जा-निवासी ख्वाजाबख्श ढारी सारंगी बहुत अच्छी बजाता था। इससे राग शुद्ध रहता था।

अन्य वादक

आसयून-निवासी क़ासिम खाँ, ओनाम-निवासी घूरन खाँ, बनारस-निवासी सुजान खाँ नक़्क़ारा अच्छा बजाते थे। झाँसी के रईस राजा रघुनाथ राव (बोंगा बहादुर) को भी नक़्क़ारा बजाने पर अधिकार था। लखनऊ-निवासी मखदूमबख्श और ओनाम-निवासी झब्बू अखिल भारतीय ख्याति के नक़्क़ारावादक थे।

बनारस में 'शहना' अच्छी बजती है। बनारस-निवासी अहमद अली ने 'शहना' को ऐसा मुलायम किया कि सारंगी के साथ बजने लगी।

आसयून-निवासी करीम खाँ का पुत्र अहमद खाँ क्लारिउनेट, खुशतरंग, जलतरंग और पटलीदार नै बजाने में सिद्धहस्त था। अहमद खाँ का दामाद घूरन खाँ नक़्क़ारची, नक़्क़ारे और तबले में अद्वितीय था। उनके शागिर्दों ने मियाँ बख्शू उस्ताद के छक्के छुड़वा दिये थे।

बाँदा के नौबतखाने का जमादार घसीटखाँ नक़्क़ारची पटलीदार नै, अलग़ोज़ा और छोटी शहना अच्छी बजाता था।

बनारस-निवासी कल्लू, धन्नू ढारी सारंगी भी अच्छी बजाते थे और खयाल भी अच्छा गाते थे।

बनारस-निवासी जतन कथक बी रहीमनबाई की संगत करने के कारण सारंगी-वादन में उस्ताद प्रसिद्ध था।

बख्शू ढारी तबला-वादन में अपनी शैली का उस्ताद हुआ। उसका पुत्र मम्मू 'गतिया' अच्छा था। बख्शू का छोटा पुत्र सलारी खाँ गत-परन में अच्छा था। दिल्ली-निवासी मक्खू पुरानी शैली के तबला-वादन में उस्ताद था। बख्शू का शिष्य नज्जू डेरेदार अपनी पीढ़ी के वादकों में श्रेष्ठ था।

पखावज में लाला भवानीदीन निष्णात गुरु थे। उनके शिष्य बाँदा-निवासी ब्राह्मण कुदऊसिंह भी श्रेष्ठ वादक हुए। वाजिदअली शाह ने इन्हें 'कुँवरदास' उपाधि दी थी। ताजखाँ डेरेदार भी भवानीदीन के शिष्य थे, उन्होंने अपने पुत्र नासिर खाँ को तैयार किया था।

ओनाम-निवासी अघावन नक़्क़ारची तबले और नक़्क़ारे में अच्छा तैयार था। लखनऊ-निवासी ढारी हाजी विलायत अली तबले का सिद्धहस्त वादक था। हज से लौटने के बाद इसने तबला बजाना छोड़ दिया था।

मुहम्मद करम इमाम ने कुछ और गायिकाओं की चर्चा भी की है। चन्द्रभागा (प्रसिद्ध भैया गनपतराव की जननी और तत्कालीन ग्वालियर नरेश की रक्षिता) सीधी पटली का ख़याल अच्छा गाती थीं, अत्यन्त सुन्दर और शिष्ट थीं। (चन्द्रभागा की बहन 'लाली' बिलसी के नवाब हैदरअली खाँ के घर में थीं। साहबज़ादा सआदतअली खाँ उर्फ़ छम्मन साहब 'लाली' के गर्भ से उत्पन्न हुए थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भैया गनपतराव और छम्मन साहब परस्पर मौसेरे भाई थे।) पेशावर-निवासिनी सद्दूबाई, लाहौर-निवासिनी बल्लो प्रभावपूर्ण ढंग से ध्रुवपद और खयाल गाती थीं। लखनऊ-निवासिनी वज़ीरन तो 'ध्रुपदवाली' प्रसिद्ध थी।

नर्तक

'गतभाव' और 'अर्थभाव' में लल्लूजी और प्रकाशजी कथक लखनऊ में उस्ताद थे। ('कथक' वर्ग अत्यन्त प्राचीन है। राजसभा में कथकों का स्थान राजा के बायीं ओर रहता था। इस सम्बन्ध में संगीत-रत्नाकर, नृत्याध्याय, श्लोक 1348 देखना चाहिए।) प्रकाशजी का भतीजा दुर्गा बहुत अच्छा था, यौवनकाल में ही उसकी मृत्यु हो गयी। प्रकाशजी के पुत्र मानसिंह तथा उसका छोटा भाई बहुत अच्छे थे।

बनारस-निवासी बेनीप्रसाद और प्रसद्दू नृत्य और अभिनय में बहुत अच्छे थे। हँडिया-निवासी रामसहाय कथक अपनी शैली में अच्छे थे।

मोहान-निवासी रमज़ानी नक़्क़ाल, लखनऊ-निवासी हुसेनबख्श, क़ा.्म अली और मिर्ज़ा वाहिद कश्मीरी बहुत अच्छे थे।

कन्हैया नक़्क़ाल गाने और नाचने में वाजिदअली शाह की प्रतिमूर्ति था।

मर्सिया पढ़नेवाले तथा अन्य व्यक्ति

सैयद मीर अली साहब ने मर्सिया पढ़ने की शैली में नये आविष्कार किये। सैकड़ों व्यक्ति उनके शिष्य थे, जिनमें क़व्वाल (बच्चे) भी थे। लखनऊ-निवासी मियाँ अहमद अली और ग़ुलाम अब्बास, मीर साहब के प्रसिद्ध शिष्यों में थे।

मियाँ मम्मन साहब का ज्ञान भी बहुत अच्छा था। मियाँ अहमद अली के शिष्य रुदौली-निवासी मेंहदीबख्श मर्सिया अच्छा पढ़ते थे।

ग़ुलाम अब्बास के पुत्र मौलवी साहब के दौहित्र इमदाद हुसेन रामपुर रियासत के नौकर थे।

मीर साहब के शिष्य मिर्ज़ा फ़िदा अली मर्सिये के अतिरिक्त होली भी अच्छी गाते थे।

लखनऊ के रईस छोटे मीर साहब मर्सिया अच्छा पढ़ते थे। उनके पुत्र मीर ज़की साहब कण्ठ-माधुर्य और गलेबाज़ी में अनुपम थे।

रुदौली-निवासी कम्मू और फ़ज्जू ढारी भी मीर साहब के अच्छे शिष्यों में थे।

फ़ैज़ाबाद-निवासी अहमद अली खाँ और असग़र अली खाँ की शैली अपनी थी, अच्छा पढ़ते थे।

मीर कल्लू और मीर काज़म अली भी अच्छे थे।

अज़ीमाबाद-निवासी मीर अहमद साहब मर्सियागो ध्रुवपदी अपनी शैली में अनुपम थे। उनके शिष्य मीर अली हसन साहब भी बहुत अच्छे थे।

नवाब सालारजंग के वंश से सम्पृक्त मिर्ज़ा मुहम्मद रज़ा खाँ साहब बहुत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समझदार मर्सियागो थे। रामपुर में इन्होंने आश्रय लिया था।

कानपुर-निवासी मीर बबर अली और हुसेनी ढारी अच्छे मर्सियागो थे।

'अजम' (ईरान) के निवासी मुल्ला मुहम्मद, खुरासान-निवासी आग़ा मुहम्मद अली, ईरानी आग़ा खुरशीद और आग़ा इस्माईल साहब श्रेष्ठ मुक़ाम-दाँ (ईरानी मुक़ाम-पद्धति के अनुसार गानेवाले) थे।

मुहम्मद करम इमाम के गुरु मिर्ज़ा खादिम अली बेग मुक़ाम-पद्धति के मर्मज्ञ थे। शाहजहानाबाद के मिर्ज़ा आबिद अली बेग उस युग में फ़र्रुखाबाद में रहते थे, वे भी मुक़ाम-पद्धति के विशेषज्ञ थे, इनकी प्रसिद्धि देश-भर में थी।

कुछ मनोरंजक घटनाएँ

मुहम्मद करम इमाम ने अपने युग की कुछ मनोरंजक घटनाएँ लिखी हैं, उनसे उस युग की प्रवृत्तियों पर प्रकाश पड़ता है।

1. एक दिन जाफ़र खाँ के पुत्र काज़म अली खाँ और सादिक़ अली खाँ ने उमराव खाँ बीनकार के पुत्र अमीर खाँ और रहीम खाँ को अपमानित करने के लिए निमन्त्रित किया। निमन्त्रित व्यक्ति दामाद थे। उस जलसे में मीर साहब और मुहम्मद करम इमाम भी विद्यमान थे। रहीम खाँ और अमीर खाँ ने मालकोस ऐसा गाया-बजाया कि वातावरण स्तब्ध हो गया। तत्पश्चात् सादिकअली खाँ रबाब लेकर बैठे और उनके भाई गाना गाने के लिए प्रस्तुत हुए। करम इमाम ने उनसे 'नागेसरी' गाने के लिए कहा, जो 'बागेसरी' और सम्पूर्ण 'मालकोस' से मिलती-जुलती है। लाख प्रयत्न करने पर भी 'मालकोस' ने पीछा न छोड़ा। मीर साहब यह कहकर उठ खड़े हुए कि आपसे मालकोस न बचेगा। बीनकार लोग गा-बजा चुके।

2. एक दिन आबिद अली ढारी ने अभद्रतापूर्वक वाजिदअली शाह से कह दिया कि आपको 'लय' पर अधिकार नहीं है। वाजिदअली शाह ने सभी संगीतज्ञों को बुलाया। मीर अहमद साहब, मीर ज़की साहब, फ़तहुद्दौला बहादुर, राजा यूसुफ़ अली खाँ इत्यादि को निर्णायक रखा गया। मुहम्मद करम इमाम भी इस गोष्ठी में था। वाजिदअली शाह ने एक-एक घड़ी सबको देकर कहा कि ईश्वर के वास्ते न्याय को हाथ से न जाने देना और किसी की मुरव्वत न करना, जो बात हो, साफ़-साफ़ कह देना, आबिदअली मुझे बेताला कहता है। इतना कहकर वाजिदअली शाह ने गाना आरम्भ किया। चार घड़ी निरन्तर गाया, लय में कहीं बाल-भर का अन्तर न पड़ा।

सबों ने निवेदन किया कि हुज़ूर कहीं से बेताले नहीं होते। वाजिदअली शाह ने रोषपूर्वक आबिद अली से कहा कि तू उस्तादी के लायक़ है, तेरा शागिर्द होता हूँ, मेरे हाथ में तू यह कलावा बाँध दे। वह बेचारा बेमौत मर गया। इतने में ही कुदऊसिंह पखावजी ने कहा कि ये सब तबलानवाज़ तो हमारे गुलाम और 'सिख्याकार' हैं, ये भला क्या आपके हाथ में कलावा बाँधेंगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोई कुछ न बोला। जोतसिंह पखावजी कुछ बोल उठे। वाजिदअली शाह ने एक हज़ार रुपयों का एक तोड़ा मँगवाकर भरी सभा में रख दिया और कहा, जिसके हाथ मैदान रहे, वह उठा ले। जोतसिंह न तो हाथ से गतपरन में कुदऊसिंह का सामना कर सके और न जुबानी जुगलबन्दी में ठहरे। हाथ और मुँह दोनों की खायी, शर्म से सिर झुका लिया। कुदऊसिंह ने उस तोड़े पर अधिकार किया और अपने पास से बहुत कुछ दान-पुण्य किया।

3. टप्पे के आविष्कारक गुलाम नबी 'शोरी' के विषय में मुहम्मद करम इमाम लिखता है कि यह अत्यन्त मस्त और लापरवाह था, संगीत का व्यवसाय न करता था। एक दिन नवाब आसफ़ुद्दौला की सवारी निकल रही थी, शोरी भी उधर से जा रहे थे। नवाब ने कहा कि मियाँ शोरी, कभी हमारे मकान पर भी आओ। शोरी ने सरलतापूर्वक कहा कि आपका घर कहाँ है? मैं नहीं जानता। आसफ़ुद्दौला ने कहा कि किसी से पूछ लेना। लोग शोरी को आसफ़ुद्दौला के महल में ले गये। नवाब ने उनका अत्यन्त सत्कार किया और प्रभूत धन-सम्पत्ति देकर विदा किया। शोरी ने वह सब-कुछ रास्ते में लुटा दिया। नवाब को जब यह ज्ञात हुआ, तब उन्होंने उतना ही माल शोरी के घर फिर भेजा।

ईरानी और भारतीय रागों में सादृश्य

जब तक मुसलमानों के हाथ में शासन रहा, तब तक उनके ददबार में ईरान, तूरान इत्यादि के कलाकारों को आश्रय मिलता रहा। ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती के समय से इस प्रवृत्ति में वृद्धि आयी। खिलजियों, तुग़लकों, मुग़लों और अवध के नवाबों के दरबारों में मुक़ाम-पद्धति के विदेशी विशेषज्ञ रहे।

मुहम्मद करम इमाम को इस सम्प्रदाय की शिष्यता का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ था। इसीलिए उसने ईरानी और भारतीय रागों की समानता पर कई पृष्ठ लिखे हैं। मिलते-जुलते ईरानी और भारतीय रागों की सूची भी उसने दी है।

हिन्दू-परम्पराओं के विषय में अज्ञान

मुहम्मद करम इमाम का परिचय किसी हिन्दू पण्डित से न आया था। वह बाबू रामसहायजी का अनन्य भक्त था!

मुहम्मद करम इमाम की सम्मति में संगीत के एक ग्रन्थकार सोमेश्वर 'महा-देवजी' हैं, 'कामदेव' का अर्थ 'वीर्य' है, सरस्वती एक 'देवनी' है, 'कोक' का अर्थ 'इल्मेग़ैब' है, कैकेयी की भाषा मिस्री और तुर्की थी, कैकेयी के व्यंग्य करने पर राम ने सीता को तलाक दे दिया था, इत्यादि।

संगीत सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दों के अर्थ का अभूतपूर्व सत्यानाश मुहम्मद करम इमाम के द्वारा हुआ है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐतिहासिक अज्ञान और साम्प्रदायिकतापूर्ण दृष्टिकोण

इतिहास से भी मुहम्मद करम इमाम का घोर अपरिचय है। वस्तुतः फ़ीरोज़ खाँ 'अदारंग', नेमत खाँ 'सदारंग' के भतीजे थे। करम इमाम ने इन दोनों को परस्पर सहोदर लिख दिया है और कहा है कि इन्होंने ध्रुवपद गाना छोड़ दिया था।

तानसेन के छोटे पुत्र विलास खाँ को करम इमाम ने तानसेन का दामाद लिख मारा है। तानसेन की किसी पुत्री की कोई चर्चा किसी प्रामाणिक इतिहास में नहीं मिलती, न संगीतजीवी राजपूतों की ही कहीं चर्चा है, परन्तु करम इमाम ने तानसेन की स्वकल्पित पुत्री से स्वकल्पित राजपूत समोखनसिंह का विवाह करा दिया है।

मुहम्मदशाह रँगीले के युग तक तानसेन को किसी ने मुसलमान नहीं लिखा। तानसेन द्वारा अकबर को प्रसन्न किये जाने के लिए इस्लाम अंगीकृत किया जाना मुहम्मद करम इमाम की अपनी कल्पना है। भगवान की बड़ी कृपा है कि तानसेन के प्रसंग में करम इमाम ने शेख़ मुहम्मद ग़ौस की कोई चर्चा नहीं की।

तबले और सितार का आविष्कार रँगीले के युग में ख़ुसरो ख़ाँ ने किया था। उस युग से पहले इन वाद्यों और इनके वादकों की चर्चा कहीं नहीं है, परन्तु इन वाद्यों के आविष्कार को अमीर ख़ुसरो के मत्थे मढ़ देने का श्रेय भी मुहम्मद करम इमाम को ही है।

अस्तु, वाजिदअली शाह के युग के कलाकारों के विषय में जानकारी देने का श्रेय मुहम्मद करम इमाम को ही है।

सन्दर्भ

1. इन्हीं बहादुर हुसेनखाँ ने रामपुर-दरबार का आश्रय लिया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रुहेले मुस्लिम नरेश और संगीत
(1707-1966 ई.)

औरंगज़ेब के पुत्र बहादुरशाह प्रथम (रा.का. 1707-1712 ई.) के युग में दाऊद खाँ नामक एक रुहेला पठान भारत आया। इसने कुछ उत्साही व्यक्तियों की एक सेना बना ली और बरेली की तहसील बहेड़ी के एक गाँव में बाकौली पर अधिकार कर लिया। उस गाँव में दाऊद खाँ को एक स्वस्थ और सुन्दर बालक मिला। दाऊद खाँ ने उस बालक को अपना पोष्य पुत्र बनाकर पाला, यही बालक बड़ा होने पर नवाब अलीमुहम्मद खाँ कहलाया।

अलीमुहम्मद खाँ मुहम्मदशाह रँगीले के युग में मुगल दरबार में पंचहज़ारी मनसबदार हो गये, यह स्थिति मुग़ल-सम्राट् के महामन्त्री कमरुद्दीन खाँ के प्रयत्नों से आयी थी। अलीमुहम्मद खाँ दिल्ली गये और उन्हें मुहम्मदशाह रँगीले के दरबारी विद्वानों और कलाकारों से सम्पर्क का अवसर मिला। रुहेला नवाबों में साहित्य और संगीत के प्रति रुचि जाग्रत करने का काम दिल्ली दरबार के इसी सम्पर्क ने किया।

मुहम्मदशाह रँगीले की ओर से अहमदशाह अब्दाली के विरुद्ध युद्ध करने के लिए जब अलीमुहम्मद खाँ सरहिन्द की ओर गये, तब अपने पुत्र मुहम्मद अब्दुल्लाह खाँ और फ़ैजुल्लाह खाँ को भी साथ ले गये, उनके तीसरे पुत्र सादुल्लाह खाँ अपने तीन भाइयों के साथ आँवला नामक स्थान में रहे। सादुल्लाह खाँ अवध के नवाब शुजाउद्दौला के पगड़ी-बदल भाई थे।

सदारंग के भतीजे, शिष्य और दामाद फ़ीरोज़ खाँ 'अदारंग', मेंहदीसेन और करीमसेन जैसे कलाकार सादुल्लाह खाँ के आश्रित थे।[1]

मुग़ल-सेना ने जब अहमदशाह अब्दाली को भगाया, तब वह अलीमुहम्मद खाँ के दोनों पुत्रों मुहम्मद अब्दुल्लाह खाँ और फ़ैजुल्लाह खाँ को अपने साथ सरहिन्द से बलात् ले गया।

1750 ई. में नवाब अलीमुहम्मद खाँ का स्वर्गवास हुआ। उनकी मृत्यु का समाचार पाकर अहमदशाह अब्दाली ने मुहम्मद अब्दुल्लाह खाँ और फ़ैजुल्लाह खाँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को भारत भेज दिया। इन लोगों के पैतृक राज्य का बँटवारा हुआ। फ़ैज़ुल्लाह ख़ाँ के हिस्से में रामपुर का क्षेत्र आया। 17 जुलाई, 1794 ई. को फ़ैज़ुल्लाह ख़ाँ का स्वर्गवास हुआ।

फ़ैज़ुल्लाह ख़ाँ के कनिष्ठ पुत्र नवाब ग़ुलाम मुहम्मद ख़ाँ ने अंग्रेजों तथा नवाब आसफ़ुद्दौला की सम्मिलित सेनाओं के विरुद्ध युद्ध किया था।

1822 ई. में ग़ुलाम मुहम्मद ख़ाँ का स्वर्गवास हुआ। इस समय दिल्ली पर अकबर द्वितीय का शासन था।

नवाब अहमद अली ख़ाँ (मृ. 1840 ई.) को शिकार और संगीत से प्रेम था। इनके पुत्र नवाब मुहम्मद सईद ख़ाँ को अंग्रेज़ों की सहायता से राज्य मिला, ये कुशल प्रबन्धक थे। 1854 ई. में इनका स्वर्गवास हुआ।

इनके पुत्र नवाब यूसुफ़ अली ख़ाँ (रा. का. 1855-1864 ई.) अत्यन्त गुण-ग्राही थे। ये शाइरी में महाकवि मूमिन के शिष्य थे। मूमिन के स्वर्गवास के पश्चात् ग़ालिब को अपनी रचनाएँ दिखाते रहे और जब लखनऊ के रंग में लिखा, तब 'असीर' को अपनी रचनाएँ दिखाते रहे। इन्होंने महाकवि ग्वाल को निमन्त्रित करके सात महीने उनका आतिथ्य किया।

वाजिदअली शाह के दरबारी कलाकार उस्ताद बहादुर हुसेन ख़ाँ, उनके दामाद ध्रुवपद गायक और बीनकार अमीर ख़ाँ और उनके भाई रहीम ख़ाँ ने नवाब यूसुफ़ अली ख़ाँ का आश्रय लिया।

1864 ई. में यूसुफ़ अली ख़ाँ के पुत्र नवाब कल्बे अली ख़ाँ गद्दी पर बैठे। इनका राज्यकाल स्वर्ण-युग कहलाता है। महाकवि ग्वाल, महापण्डित दत्ताराम, महाकवि दाग़, अमीर जैसे लोग इनके दरबार में थे और अमीर मीनाई भी।

कानपुरवाली अमानीजान (ख़याल और टप्पा गानेवाली), दिल्लीवाली अमीरजान, अमीर ख़ाँ बीनकार, सुरसिंगारवादक बहादुर हुसेन ख़ाँ, बाक़रअली ख़ाँ गवैये, गायिकाएँ झूमन और जादी, मोधू ख़ाँ पखावजी, हैदरबख़्श सारंगी-वादक, हस्सू ख़ाँ गायक, सुब्बा गवैया, अल्लू ख़ाँ गवैया, रहीमुल्लाह ख़ाँ, अज़ी-मुल्लाह गवैया, काज़िमअली ख़ाँ क़व्वाल, छिद्दा ख़ाँ तबलावादक, मुंदरू सारंगी-वादक, निसार अली, अमीर अली शहनाईवादक, नन्हे ख़ाँ माशूक नवाज़, मुराद अली ख़ाँ, अलीजान नर्तक, दारोग़ा महबूबजान, लज़्ज़तबख़्श, नौरतन, चुन्नी, मम्मी, अल्लाहरक्खी, नन्नी कलकत्तेवाली, अब्बासी, अजीज़न, हींगनजान, बन्दीजान इत्यादि कल्बे अली ख़ाँ के कलाकारों की सूची में आते हैं।

1887 ई. में कल्बे अलीख़ाँ और 1889 ई. में उनके उत्तराधिकारी अहमद अली ख़ाँ का स्वर्गवास हुआ।[2]

हामिद अली ख़ाँ (रा. का. 1889-1930 ई.) की गति ध्रुवपद, पखावज, तबले और नाच में थी। स्व. मुश्ताक हुसेन ख़ाँ, स्व. अच्छन महाराज, तबला-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वादक अज़ीम खाँ और स्व. भातखण्डे जैसे व्यक्ति नवाब हामिदअली खाँ के शिष्य थे।

नवाब हामिदअली खाँ के गुणियों में प्रमुख बीनकार वज़ीर खाँ, सितार-वादक करीम खाँ और वहीद खाँ, सरोवादक फ़िदा हुसेन खाँ, सारंगीवादक बुनियाद हुसेन खाँ, इनायत हुसेन खाँ, हैदर खाँ, लखनऊ के रज़ा हुसेन, काले नज़ीर खाँ, ग़फ़ूर खाँ, मुहम्मदअली खाँ, गयाप्रसाद पखावजी, नासिर खाँ पखावजी, अयोध्याप्रसाद पखावजी, दिल्ली के तबलावादक नत्थू खाँ, अज़ीम खाँ, दतियावाले मुहम्मद हुसेन, अच्छन महाराज, लच्छू महाराज इत्यादि थे।

नवाब हामिद अली खाँ के पुत्र रज़ा अली खाँ 1930 ई. में गद्दी पर बैठे। नवाब हामिद अली खाँ के दरबार के कलाकार मुश्ताक हुसेन खाँ, वहीद खाँ, अच्छन महाराज, अयोध्याप्रसाद इत्यादि तो नवाब रज़ाअली खाँ के दरबार में रहे ही। सादिक़अली खाँ बीनकार और अहमद जान खाँ थिरकुआ जैसे लोगों ने भी उनका आश्रय लिया।

7-3-1966 ई. को नवाब रज़ाअली खाँ का स्वर्गवास हो गया।

हैदरअली खाँ और उनके साहबजादा सआदतअली खाँ (छम्मन साहब) और साहबजादा अशफ़ाकअली खाँ (जानी साहब) की चर्चा के बिना रामपुर के राजवंश की चर्चा अपूर्ण है।

हैदर अली खाँ नवाब कल्बेअली खाँ के सौतेले भाई थे, इनकी जननी 'तूती' नामक गानविशारदा थीं। हैदरअली खाँ को बिलसी का तालुका मिला था। इनका जन्म 1846 ई. में हुआ, ये अच्छे आख्यायिका-लेखक, सन्तकवि और अनेक भाषाविद् थे।

बहादुर हुसेन खाँ सुरसिंगार-वादक, बासत खाँ और बनारस-निवासी सादिक़ अली खाँ से हैदरअली खाँ ने संगीत की शिक्षा प्राप्त की थी, ये अमीर खाँ (ध्रुवपद-गायक और बीनकार) के भी शिष्य थे।

रामपुर के प्रसिद्ध बीनकार वज़ीर खाँ को उनके पिता अमीर खाँ अल्पवयस्क छोड़कर स्वर्गवासी हो गये। इनके नाना बहादुर हुसेन खाँ का स्वर्गवास भी तभी हो चुका था, जब ये दस-ग्यारह वर्ष के थे, अतः वज़ीर खाँ की शिक्षा-दीक्षा हैदर अली खाँ के चरणों में हुई।

छम्मन साहब और जानी साहब भी अपने पिता हैदरअली खाँ साहब के ही शिष्य थे।

छम्मन साहब स्व. भातखण्डे के गुरु थे। छम्मन साहब की ही कृपा से भात-खण्डेजी ने रागों के रहस्य समझे। 'फ़लसफ़ए मूसिकी' नामक ग्रन्थ छम्मन साहब की रचना है और 'नगमए सआदत' जानी साहब की कृति है।

'लाली' और 'चन्द्रभागा' नामक दो बहनें अच्छी गायिकाएँ थीं। लाली के गर्भ से हैदर अली खाँ के पुत्र छम्मन साहब और जानी साहब का जन्म हुआ और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चन्द्रभागा के गर्भ से ग्वालियर-नरेश के पुत्र भैया गनपतराव ने जन्म लिया।

इस शताब्दी में रामपुर-दरबार ने संगीत-जगत् को स्व. अलाउद्दीन खाँ (सरोद-वादक), स्व. हाफ़िजअली खाँ (सरोद-वादक) जैसे कलाकार और भातखण्डे और बृहस्पति जैसे विचारक दिये।

सन्दर्भ

1. इन्तख़ाबे यादगार, पृ. 19
2. मुसद्दस बेनज़ीर, पृ. 77, 78, 79, 80, 81, 100, 101, 112-120

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रजभाषा-ध्रुवपद का जन्म, उसकी पृष्ठभूमि और परिणाम

प्रसिद्ध ग्वालियर नरेश मानसिंह तोमर 1486 ई. में राजसिंहासन पर बैठे, इस समय दिल्ली पर बहलोल लोदी, मालवा पर ग़यासुद्दीन ख़िलजी, गुजरात पर महमूद बींगड़ा, गुलबर्गा में महमूद बहमनी और विजयनगर पर विरूपाक्ष का शासन था।

1488 ई. में बहलोल लोदी मर गया और सिकन्दर लोदी उसका उत्तराधिकारी हुआ, 1500 ई. में ग़यासुद्दीन ख़िलजी मरा और उसके स्थान पर नासिरुद्दीन बैठा। 1511 ई. में महमूद बींगड़ा की मृत्यु हुई और मुज़फ़्फ़रशाह द्वितीय ने गुजरात की गद्दी सँभाली। विजयनगर में एक नये राजवंश का उदय उस युग की एक विशिष्ट घटना थी। इस वंश के प्रथम प्रतापी शासक कृष्णदेव राय का राज्याभिषेक 1509 ई. में हुआ।

मानसिंह तोमर की मृत्यु 1516 ई. में हुई।

उस समय सिकन्दर लोदी की सभा में मीरान सैयद नूरुल्लाह तथा सैयद इब्नुर्रसूल जैसे संगीत-मर्मज्ञ थे।[1] मियाँ ताहा ब्राह्मणों और अच्छे-अच्छे संगीतज्ञों को शिक्षा दे रहे थे अर्थात् ब्राह्मण विचारकों में भी उस समय संगीत के ईरानी सिद्धान्तों को समझने की प्रवृत्ति बढ़ चुकी थी।[2]

मालवा का सुलतान ग़यासुद्दीन ख़िलजी भी संगीतानुरागी था। उसके दरबार में दाक्षिणात्य पण्डितों की भी पहुँच थी। संगीत-रत्नाकर के तेलुगू-टीकाकार विट्ठल के पिता ने समिति के समक्ष बाईस श्रुतियों की सिद्धि करके एक सहस्र स्वर्ण-मुद्राएँ ग़यासुद्दीन ख़िलजी से प्राप्त की थीं।[3]

जौनपुर का हुसेनशाह शर्क़ी (रा. का. 1462-1500 ई.) ख़ुसरो की पद्धति से नवीन संकीर्ण रागों की रचना कर रहा था।

स्पष्ट है कि मुसलमान बादशाहों के दरबार में वह परिस्थिति न थी जिसमें विशुद्ध भारतीय भावनाएँ उभर सकें।

बहमनी दरबार में लोकभाषा हिन्दी की प्रतिष्ठा उस युग तक भलीभाँति हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चुकी थी, यह चिश्ती-परम्परा के सूफ़ियों के प्रयत्नों का परिणाम था। गुजरात में भी स्थिति लगभग यही थी।

मानसिंह ने भी युग की आवश्यकता को समझा और एक पारम्परिक प्रबन्ध 'ध्रुवपद' को लोकभाषा दी। व्रजभाषा के माध्यम से इन ध्रुवपदों में लोक-भावना की अभिव्यक्ति हुई। नर-नारी का सनातन प्रेम इन ध्रुवपदों का विषय बना। विषय की दृष्टि से ये ध्रुवपद ग़ज़ल का जवाब थे, फलतः ये सभी को अच्छे लगे।

मानसिंह तोमर ने पद-परम्परा को भी नवजीवन दिया और विष्णु-भक्ति से युक्त पदों को 'विष्णुपद' कहा। ध्रुवपदों की परम्परा दरबारों में प्रतिष्ठित हुई और विष्णुपद-परम्परा ने हमें अष्टछाप के सूरदास, नन्ददास, कुम्भनदास इत्यादि कवि दिये। विषय की दृष्टि से ये पद क़व्वालियों का जवाब थे।

भक्तों में ध्रुवपद-परम्परा का आश्रय स्वामी हरिदासजी ने लिया।

अपने प्रयोजन की सिद्धि में मानसिंह तोमर को बैजू, बख्शू, महमूद, लोहंग और नायक पाण्डवी का सहयोग मिला। नायक पाण्डवी तिलंगाने से स्नान करने के लिए कुरुक्षेत्र आया था और मानसिंह का यश सुनकर ग्वालियर चला आया।[4]

मानसिंह तोमर का कार्य एक पवित्र यज्ञ था, जिसमें बैजू प्रधान पुरोहित थे।[5] बैजू व्रजभाषा-ध्रुवपदों के आदि कवि थे, उन्होंने बख्शू को प्रशिक्षण दिया था[6] और गोपाल को भी।[7]

बख्शू के ध्रुवपदों की भाषा अत्यन्त प्रांजल और प्रौढ़ है, ये नायिका-भेद के मर्मज्ञ थे और मानसिंह तोमर का निर्देशन इन्हें प्राप्त होता रहता था।[8] बख्शू के पुत्र का नाम 'हुसेनी' था।[9]

वैष्णव भक्त श्रद्धापूर्वक बैजू को भी हरिदासजी का शिष्य घोषित कर देते हैं, परन्तु बात उलटी है, वे निस्सन्देह ध्रुवपदों के आदि कवि बैजू की परम्परा के शिष्य थे। संगीत में उनका शिष्य कोई न हुआ, क्योंकि उस समय के ध्रुवपद-गायकों का ध्यान राजदरबारों में आश्रय पाने की ओर था, बाबाजी बनने का विचार किसी के मन में न आया था। तानसेन को भी दरबारी गवैया बनना था, उसे भला हरिदास जी से क्या लेना-देना था। वह अत्यन्त यशस्वी हुआ, उसकी मृत्यु के दो सौ वर्ष पश्चात् लिखे हुए ग्रन्थों में से किसी ने उस बेचारे को हरिदासजी का शिष्य बना डाला, तो किसी ने गोविन्द स्वामी का। मुसलमान भी क्यों पीछे रहते, उन्होंने तानसेन को उन शेख मुहम्मद ग़ौस का मुरीद बना डाला, जो संगीत को सर्वथा त्याज्य समझते थे।

1854 ई. में मुहम्मद करम इमाम द्वारा लिखे हुए ग्रन्थ 'म-अदन्-उल्-मूसिक़ी' तक में मुहम्मद ग़ौस और तानसेन का कोई पारस्परिक सम्बन्ध नहीं बताया गया। तानसेन के समसामयिक इतिहासकार अबुल् फ़ज़्ल और मुल्ला अब्दुल क़ादिर बदायूनी भी शेख मुहम्मद ग़ौस के साथ तानसेन का कोई सम्बन्ध नहीं बतलाते, परन्तु इसी शताब्दी में लोगों ने शेख मुहम्मद ग़ौस के मकबरे के पास तानसेन की क़ब्र का आविष्कार कर डाला। यह स्थिति तथ्यों के साथ उपहास करने का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुपम उदाहरण है।

जहाँगीर ने लिखा है कि शेख सलीम चिश्ती प्रतिदिन सीकरी में तानसेन का गाना सुनते थे, यहाँ तक कि अपने स्वर्गवास के दिन भी उन्होंने तानसेन का गाना सुना। तानसेन की शवयात्रा के साथ गुणी लोग गाते-बजाते जा रहे थे। शेख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती के जनाज़े के साथ भी गाना-बजाना हुआ था, परन्तु वह निर्वेदात्मक था, तानसेन की शवयात्रा के समान विवाहोत्सव जैसा नहीं। अतः तानसेन निर्भ्रान्त रूप में चिश्ती-परम्परा से सम्पृक्त होने पर भी हिन्दू थे। शेख़ मुहम्मद ग़ौस से उनका कोई सम्बन्ध न था।

अस्तु, कहना यही है कि मानसिंह तोमर ने ब्रजभाषा-ध्रुवपद की जिस परम्परा को जन्म दिया, उसके ..यकों को दरबारों में आश्रय मिला।

मानसिंह तोमर का देहावसान 1516 ई. में हुआ। 1518 ई. में इब्राहीम लोदी ने मानसिंह के पुत्र विक्रमाजीत को पराजित करके ग्वालियर पर अधिकार कर लिया। 1526 ई. में इब्राहीम लोदी की ओर से बाबर की सेनाओं के विरुद्ध युद्ध करता हुआ विक्रमाजीत मारा गया।

बैजू और बख्शू कालिंजर के राजा कीरत की सभा में चले गये, तत्पश्चात् इन्हें बहादुरशाह गुजराती के दरबार का आश्रय मिला। 1535 ई. में बैजू हुमायूँ की पकड़ में आ गये, पुरस्कृत हुए, परन्तु अवसर मिलते ही बहादुरशाह के पास भाग गये। बख्शू के गुरुबन्धु गोपाल भी बहादुरशाह गुजराती के आश्रय में थे। बख्शू के पुत्र हुसेनी महमूद द्वितीय के मन्त्री दरिया खाँ के आश्रित थे।

ये तथ्य प्रामाणिक इतिहास-ग्रन्थों पर सिद्ध हैं।

जिन लोगों ने तानसेन को देखा था, उनके अनुसार तानसेन के विषय में निम्नलिखित ऐतिहासिक तथ्य प्राप्त हैं—

तानसेन ग्वालियर-निवासी थे।[10] वे इस्लामशाह सूर के आश्रय में थे और मुहम्मद आदिलशाह 'अदली' को गुरुवत् समझते थे।[11] अकबरी दरबार में आने से पूर्व तानसेन रीवाँ नरेश महाराज रामचन्द्र के दरबार में थे जिन्होंने एक बार प्रसन्न होकर तानसेन को एक करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ दी थीं।[12] अकबर ने तानसेन की प्रशंसा सुनी[13] और जलालखाँ कूर्ची को राजा रामचन्द्र का मानभंग करने और तानसेन को लाने के लिए भेजा। विवश होकर तानसेन 1562 में अकबरी दरबार में आये,[14] अपने शील और विनम्र स्वभाव से उन्होंने अकबर को प्रसन्न कर लिया।[15] अपने बनाये हुए ध्रुवपदों में वे अकबर का नाम भी डालते रहे,[16] वे सुन्दर कवि थे।[17] शेख़ सलीम चिश्ती को तानसेन का गाना बहुत पसन्द था, उन्होंने अपने स्वर्गवास के दिन भी तानसेन का गाना सुना था।[18] उन्हें अकबर ने 'कण्ठाभरणवाणीविलास' उपाधि दी थी, परन्तु 1575 ई. में अत्यन्त वृद्धावस्था के कारण उनका कण्ठ-स्वर जंगली जानवरों-जैसा हो गया था।[19] अकबरी दरबार के प्रमुख गायकों में तानसेन के बड़े पुत्र तानतरंग खाँ भी थे, तथा अन्य शिष्य भी। अकबरी दरबार के कलाकारों में तानतरंग खाँ का नम्बर चौदहवाँ था।[20] अकबरी दरबार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के अवशिष्ट बाईस प्रमुख कलाकार तानतरंग खाँ से जूनियर थे, अर्थात् उस समय तानतरंग खाँ की आयु भी पर्याप्त थी। लालखाँ अपने बचपन में ही तानसेन के पास पहुँच गये थे, तानसेन ने विलासखाँ की पुत्री का विवाह लाल खाँ से करा दिया। लाल खाँ की मृत्यु 1652 ई. में हुई, जबकि वे सत्तर वर्ष के थे।[21]

1589 ई. में तानसेन का स्वर्गवास आगरा में हुआ। उनकी शवयात्रा में अकबरी दरबार के गायक-वादक गाते-बजाते विवाहोत्सव जैसा मनाते गये।[22]

अबुल फज़्ल, मुल्ला अब्दुल क़ादिर बदायूनी और जहाँगीर तीनों ही तानसेन से घनिष्ठ रूप में परिचित थे। अतः उनके द्वारा प्रतिपादित तथ्यों से इनकार नहीं किया जा सकता।

शेख मुहम्मद ग़ौस ने बहादुरशाह गुजराती से सन्धि की थी, अतः शेरशाह सूर और उसकी सन्तानों के सम्बन्ध शेख मुहम्मद ग़ौस से अच्छे न थे। तानसेन को इस्लामशाह सूर और मुहम्मद आदिलशाह अदली जैसे सूरवंशीय सुलतानों का आश्रय प्राप्त था, अतः तानसेन और शेख मुहम्मद ग़ौस में अच्छे सम्बन्ध सम्भव ही न थे। शेख मुहम्मद ग़ौस के द्वारा बहादुरशाह गुजराती का पक्ष लिये जाने के कारण बैराम खाँ भी शेख़ मुहम्मद ग़ौस से रुष्ट था, उसने शेख मुहम्मद ग़ौस को बन्दी बनाने का आदेश दिया था।[23] अकबर की दृष्टि में भी शेख मुहम्मद ग़ौस का कोई सम्मान न था। वह शेख सलीम चिश्ती का मुरीद था, जिनके आशीर्वाद से सलीम का जन्म हुआ था। अतः शेख मुहम्मद ग़ौस और तानसेन के पारस्परिक सम्बन्ध की सभी कहानियाँ पश्चात्कालीन कपोल-कल्पनाएँ हैं।

बैजू, बख्शू और गोपाल को बहादुरशाह गुजराती के दरबार में आश्रय मिला। तानसेन सूरी बादशाहों के आश्रित थे। इन दोनों दरबारों के सम्बन्ध मधुर न थे। शेरशाह का उत्कर्ष गुजराती सुलतान भला कैसे सह सकते थे। अतः प्रतिस्पर्द्धी सुलतानों के आश्रित कलाकारों की प्रतिस्पर्धा स्वाभाविक थी :

गुजराती दरबार में आश्रित गोपाल और सूरवंशीय बादशाहों के आश्रित तानसेन की प्रतिद्वन्द्विता की कहानियाँ अतिरंजना के साथ प्रसिद्ध हो गयीं।

हरिदासजी बैजू के शिष्य और बख्शू के गुरुबन्धु थे। तानसेन के चारित्र्य, रीति-नीति, आचार-विचार पर हरिदासजी का कोई प्रभाव परिलक्षित नहीं होता। 1505 ई. के पश्चात् हरिदासजी वृन्दावन में विरक्त जीवन बिता रहे थे। अकबर के दरबार में तानसेन 1562 ई. में आये तब हरिदासजी बयासी वर्ष के थे। हरिदासजी की कोई चर्चा अबुल फज़्ल या मुल्ला अब्दुल क़ादिर बदायूनी ने नहीं की, जबकि अबुल फज़्ल ने अन्य हिन्दू विद्वानों के विषय में लिखा है।

इस्लामशाह सूर के राज्य-काल (1545-1549 ई.) से पूर्व तानसेन कहाँ रहे, यह पता चलने का कोई पुष्ट ऐतिहासिक प्रमाण अब तक उपलब्ध नहीं हुआ है।

तानतरंग खाँ और विलास खाँ भी तानसेन के पुत्र थे और सूरतसेन भी। सूरतसेन की माँ हिन्दू थी तथा तानतरंग खाँ और विलास खाँ की माँ मुसलमान।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुसलमानों से सम्पर्क के कारण तानसेन धर्मभ्रष्ट भले ही समझे गये हों, परन्तु उनके द्वारा इस्लाम अंगीकृत किये जाने का कोई उल्लेख किसी समसामयिक इतिहासकार ने नहीं किया है।

कुछ लोगों का कथन है कि अकबरकालीन लेखक फ़ज़ल अली शाह के ग्रन्थ 'तवारीखे कुल्लियात ग्वालियर' और 'मुन्तखबुत्तवारीख' (1889 ई.) में प्रकाशित पृष्ठ 131 के अनुसार मानसिंह तोमर के पुत्र विक्रमाजीत ने तानसेन को 'तानसेन' उपाधि दी थी।[24] विक्रमाजीत 1516 ई. में ग्वालियर के सिंहासन पर बैठा और 1518 ई. तक ग्वालियर-नरेश रहा। इस अवधि में यदि विक्रमाजीत ने तानसेन को उपाधि दी हो, तो उस समय तानसेन की आयु कम-से-कम पच्चीस वर्ष होनी चाहिए, फलतः तानसेन का जन्म 1494 ई. अथवा उससे पूर्व पड़ता है। इस दृष्टि से मृत्यु के समय तानसेन प्रायः 95 वर्ष के रहे होंगे। सन् 1575 ई. में उनकी आयु लगभग इक्यासी वर्ष रही होगी, जबकि उनका कण्ठ-स्वर विकृत हो गया था।

इस दृष्टि से अकबरी दरबार में प्रवेश (1562 ई.) के समय तानसेन प्रायः उनहत्तर वर्ष के थे।

तानसेन-विषयक अनेक अनर्गल और कल्पना-प्रसूत मान्यताओं का उल्लेख करके उनका खण्डन करने की आवश्यकता यहाँ नहीं। विचारशील पाठक नीर-क्षीर-विवेक से स्वयं सत्य और असत्य का निर्णय कर लेंगे।

हमारी स्थापनाओं का निष्कर्ष यह है कि तानसेन ग्वालियर की एक संगीत-जीवी जाति में उत्पन्न हुए थे, उनके संस्कार अपनी कुल-परम्परा के अनुसार थे। वे संगीत को विशुद्ध आजीविका-प्राप्ति का साधन मानते थे, यही उन्होंने किया भी। यौवन में ही वे किसी मुस्लिम नारी के सम्पर्क में आ गये थे, जिससे उनके दो पुत्र तानतरंगखाँ और बिलासखाँ उत्पन्न हुए। विवाहिता पत्नी से भी उनके दो पुत्र हमीरसेन और सूरतसेन हुए। बिलासखाँ की पुत्री का विवाह उन्होंने लालखाँ से करा दिया। लालखाँ जहाँगीर के दरबार में रहा और शाहजहाँ का संरक्षण इसे प्राप्त हुआ। शाहजहाँ ने इसे 'गुनसमन्दरखाँ' उपाधि 1637 ई. में दी। 1652 ई. में इसका देहान्त हुआ।[25] लालखाँ के पुत्र खुशहालखाँ, बिसरामखाँ, रसबैनखाँ और एक अज्ञात नाम थे।[26] बिसरामखाँ जुलाई, 1571 ई. में मर गया। खुशहाल खाँ और स्व. बिसरामखाँ के पुत्र भूपतखाँ को औरंगज़ेब ने खिलअत दी।[27]

रागदर्पण के अनुसार हमीरसेन और सूरतसेन भी तानसेन के पुत्र थे। मिसरीखाँ ढारी बिलासखाँ का शिष्य था। मियाँचन्द, रंगखाँ और बख्तखाँ को रागदर्पण में तानसेन का शिष्य कहा गया है और बसन्ती को रंगखाँ का।

तानसेन के समकालीन तथा उनकी संगति करनेवाले दीर्घजीवी भगवान् पखावजी से सुपरिचित फ़क़ीरुल्लाह तथा औरंगज़ेबनामा के आधार पर तानसेन की ज्ञात परम्परा यों है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

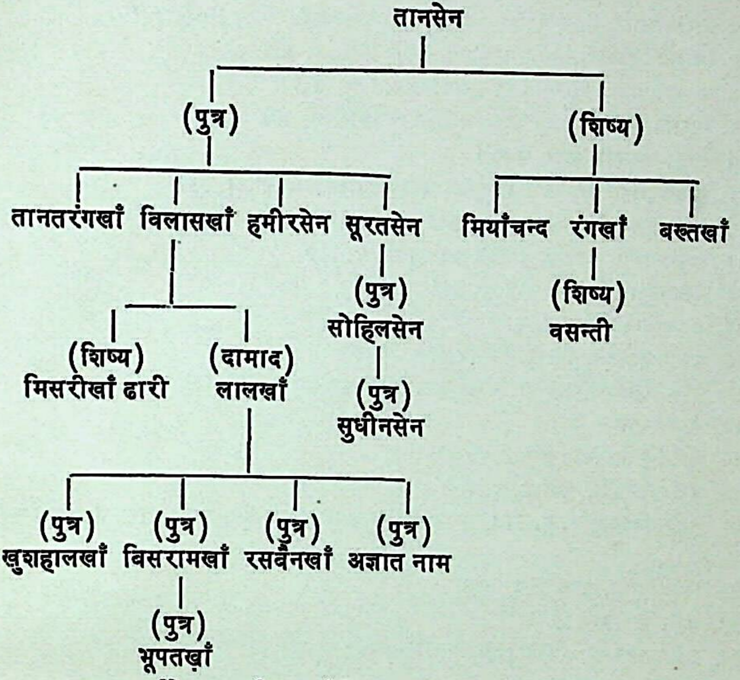

यह वृक्ष आईने अकबरी, जहाँगीरनामा, औरंगज़ेबनामा और रागदर्पण के आधार पर बनाया गया है।

यह स्थिति यह सिद्ध करती है कि तानसेन की कोई पुत्री नहीं थी। लालखाँ विलासखाँ के दामाद थे।

मिसरीखाँ 'ढारी' जाति में उत्पन्न हुआ था और विलासखाँ का शिष्य-मात्र था।

तानसेन के साथ अपनी पितृ-परम्परा का सम्बन्ध जोड़ने के लिए कुछ लोगों ने बेचारे मिसरीखाँ को बलात् मिसरीसिंह राजपूत बनाकर उन्हें तानसेन की कल्पित पुत्री का दामाद घोषित किया और उनका नाम 'नवातखाँ' रख दिया है। इस कहानी में कोई तथ्य नहीं है। मिसरीखाँ जन्मजात ढारी था और औरंगज़ेब के भाई शुजा के आश्रय में था।

सन्दर्भ

1. उत्तर तैमूरकालीन भारत, पृ. 134
2. वही, पृ. 175
3. भरतकोप, भूमिका, पृ, 12
4. रागदर्पण; रामपुर-प्रति, भूमिका
5. मिराति सिकन्दरी, पृ. 249; उर्दू, 'आजकल', अगस्त 1956, पृ. 104

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

6. बादशाहनामः, मिराति आफताबनुमा, उर्दू, 'आजकल', अगस्त 1956, पृ. 103
7. मिराति सिकन्दरी, उर्दू, 'आजकल', अगस्त 1956, पृ. 105
8. बादशाहनामः, उर्दू 'आजकल', अगस्त 1956, पृ. 103
9. मिराति सिकन्दरी, उर्दू 'आजकल', अगस्त 1956, पृ. 103
10. आईने अकबरी, अबुल फज़्ल।
11. मुन्तखबुत्तवारीख़, खण्ड 1, मुल्ला अब्दुल क़ादिर बदायूनी, पृ. 557
12. मुन्तख़बुत्तवारीख़, खण्ड 2, पृ. 345
13. अकबरनामा, खण्ड 2, बेवरिज कृत अनुवाद, पृ. 279
14. मुन्तख़बुत्तवारीख़, खण्ड 2, पृ. 345
15. अकबरनामा, खण्ड 2, पृ. 279
16. इकबालनामा जहाँगीरी, बेवरिज द्वारा उद्धृत।
17. तुज़्के जहाँगीरी, खण्ड 1, अलेक्ज़ेण्डर रोजर्स कृत अनुवाद, पृ. 413
18. जहाँगीरनामा
19. मुन्तख़बुत्तवारीख़, खण्ड 2, पृ. 273
20. आईने अकबरी, खण्ड 2, पृ. 680
21. संगीत-चिन्तामणि, पृ. 281 पर हमसे प्रमादवश इनकी मृत्यु-तिथि, 1602 ई. लिख गयी है।
22. अकबरनामा, खण्ड 2, पृ. 880
23. वही, पृ. 133-135
24. उर्दू 'आजकल', अगस्त 1956, पाद-टिप्पणी 2, पृ. 87
25. बादशाहनामा, 2, 5
26. औरंगज़ेबनामा, भाग 2, पृ. 9
27. वही, पृ. 32

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूफी और हिन्दी

विचारों की अभिव्यक्ति, प्रचार और प्रसार के लिए भाषा सर्वश्रेष्ठ साधन है। भाषा वह होनी चाहिए, जो श्रोताओं एवं पाठकों के लिए बोधगम्य हो। इस तत्त्व को समझकर सूफ़ी लोगों ने लोकभाषा में अपने विचार व्यक्त किये और इस भाषा का नामकरण 'हिन्दी' या 'हिन्दवी' किया। सूफ़ियों की इस हिन्दी में स्थानीय प्रभाव भी रहता था, परन्तु यह भाषा सर्वत्र हिन्दी ही कहलाती थी।

अपनी इस नीति से सूफ़ी प्रचारक भारतीय जनता के निकट आ गये। सूफ़ियों का दरबार सबके लिए खुला था। मलिक मुहम्मद जायसी ने अखरावट में इस तथ्य का प्रतिपादन किया है कि बड़े-बड़े सूफ़ी हिन्दी भाषा का व्यवहार करते थे।

शेख मुईनुद्दीन चिश्ती के क़व्वाल भारतीय भाषा में निबद्ध गीत गाते थे, जनता आकृष्ट होकर इकट्ठी हो जाती थी।[1] शेख निज़ामुद्दीन चिश्ती हिन्दी भाषा से भली भाँति परिचित थे।[2] उनके अनुवर्त्तियों ने हिन्दी भाषा में काव्य-रचना आरम्भ कर दी थी।

शेख फरीदुद्दीन गंजशकर की एक उक्ति है।—

"आसा केरी यही सो रीत।
जाऊँ नायँ कि जाऊँ मसीत॥"

'झूलना-शकरगंज' शेख फरीदुद्दीन गंजशकर की एक छोटी-सी कृति है, जिसका कुछ अंश यों है—

"जली याद की करना हर घड़ी इक तिल हुजूर सौं टलना नहीं।
उठ बैठ में याद सूँ शाद रहना गवाहदार को छोड़ के चलना नहीं।
पाक रख तूँ दिल को ग़ैर सेती आज साईं फ़रीद का आवता है।
क़दीम क़दीमी के आँवने से लाज़वाल दौलत को पावता है॥"[3]

इन सूफ़ी सन्तों के घरों में भी हिन्दी बोली जाती थी,[4] क्योंकि इस युग में अनेक मुसलमान भारतीय नारियों की सन्तान थे।

शेख शरफ़ुद्दीन बू अली क़लन्दर इसी युग के एक प्रतापी सन्त थे, जिनका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रभाव जनता पर अत्यधिक था। अमीर ख़ुसरो ने इन्हें गा-बजाकर रिझाया था और अलाउद्दीन खिलजी के लिए इनका अनुग्रह प्राप्त किया था। निम्नलिखित प्रसिद्ध दोहा—

"सजन सकारे जायँगे और नैन मरेंगे रोय।
विधना ऐसी रैन को भोर कधी ना होय।"

शेख़ शरफ़ुद्दीन बू अली क़लन्दर की उक्ति है। मुबारज़ख़ाँ ने जब यात्रा का संकल्प किया, तब क़लन्दर साहब के मुख से यह दोहा निकला था। शेख़ साहब का स्वर्गवास 1323 ई. में हुआ।[5]

शेख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती का जन्म बदायूँ में हुआ, प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा भी वहीं हुई। ये अपने मुरीद अमीर ख़ुसरो और हसन अला संजरी को हिन्दी-काव्य-रचना के लिए प्रेरित करते थे।

शेख़ शरफ़ुद्दीन याह्या मनेरी (ज. 1263, मृ. 1370 ई.) का प्रचार-केन्द्र बिहार था। इनके बताये हुए साँप-बिच्छू का जहर उतारने के मन्त्र प्रसिद्ध हैं; जैसे—

"काला हंसा ना मिला, बसे समन्दर तीर।
पंख पसारे बिख हरे निरमल करे सरीर॥"[6]

ख़्वाजा निज़ामुद्दीन चिश्ती के ख़लीफ़ा और मुरीद शाह बुरहानुद्दीन ग़रीब (मृ. 1337 ई.) तथा उनके भाई मुन्तख़बुद्दीन देवगिरि (दौलताबाद) में जा बसे थे। ये लोग प्रादेशिक और सार्वदेशिक भाषाओं को भली-भाँति बोलते थे।[7]

मुहम्मद तुग़लक़ ने जब देवगिरि (दौलताबाद) को राजधानी बनाया, तब दिल्ली की सारी जनता वहाँ भेजी गयी थी, फलतः दक्षिण में हिन्दी की आधारशिला रखी गयी। शेख़ नसीरुद्दीन चिराग़ देहली (मृ. 1356 ई.) के ख़लीफ़ा गेसूदराज़ बन्दानवाज बहमनी शासन के पाँचवें सुलतान फ़ीरोज बहमनी (रा. का. 1397-1422 ई.) के युग में गुलबर्गा पहुँचे। अरबी और फ़ारसी से अनभिज्ञ श्रोताओं के लिए ये अपने विचार हिन्दी में प्रकट करते थे। इन्होंने हिन्दी में 'मेराजुश्शाइक़ीन' नामक ग्रन्थ लिखा है, जिसमें गद्य-पद्य दोनों हैं।[8]

इनकी भाषा का नमूना यों है—

"और माशूक़ बेमिसाल नूर नबी न पाया।
और नूर नबी रसूल का मेरे जीव में भाया
अपसें अपीं दिखावने कैसी आरसी लाया।"[9]

अहमदशाह गुजराती (रा. का. 1411-1441 ई.) के पीर हज़रत कुतुब आलम हिन्दी बोलते थे। रात के समय एक बार ठोकर लगी, तो बोले—

"लोहा है कि लकड़ी है कि पत्थर है।"

इनके काव्य का नमूना है—

"मोहम्मद पर मैं खड़या साइं प्रेम चखाय।"[10]

सैयद मुहम्मद जौनपुरी एक बुद्धिवादी सूफ़ी थे। इनके अनुयायी इन्हें 'अन्तिम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri
महदी' मानते हैं। विरोध की अधिकता के कारण इन्हें निरन्तर यात्रा करनी पड़ी। इनकी भाषा का नमूना है—

"हौं बलिहारी सजना हौं वलिहार
हौं सिरजन सिहरा साजन मुझ गल हार।"

मृत्यु से कुछ पूर्व कहा—

"हीरों तत्त परवान तूं कान पर धोय मधोय।
ओझल होवें नह्वत से सुख निंदरी ना सोय।"

एक और दोहा है—

"चन्दर कहें तराइन कों सूरज देखो आय।
ऐसा भगवन्त जो भेटे दिश्त पाप छुड़ जाय।।"
"तू रूप देख जग मोहया, चन्द तराइन भान।
उन्हीं रूप फुन होऊँ की वही न होवे आन।।"

शेख बहाउद्दीन वाजन (ज. 1388, मृ. 1506 ई.) बुरहानपुर के सूफ़ियों में हैं, शेख अज़ीज़ुल्लाह के मुरीद थे। इनकी एक रचना है—

"यों वाजन, बाजे रे असरार छाजे।
मन्दल मन में धमके, रबाब रंग में झमके,
सूफ़ी इन पर ठुमके
यों बाजन बाजे रे असरार छाजे।।"
"यह फ़ितनी क्या किसी से मिलती है
जब मिलती है, तब छलती है।।
अव्वल आँ छल बहुत छलाये।
आँ छोहरी भुती कमाये।।
आँ रो कर बहुत रुलाये।
यह फ़ितनी क्या किसी से मिलती है।
जब मिलती है, तब छलती है।।"
"रोज़े धर धर नमाज़ गुज़ारी दीनी फ़र्ज़ ज़कात
बिन फ़ज़्ल तेरे छूटक नाहीं आ गयी मुख में बात।"[11]

शेख अब्दुल कुद्दूस गंगोही (ज. 1455, मृ. 1538 ई.) के पीर शेख मुहम्मद थे, जो शेख अब्दुल हक़ चिश्ती साबिरी के पुत्र थे। शेख गंगोही हिन्दी के कवि थे और इनकी मुद्रा 'अलखदास' थी। इनके दोहरे हैं—

"यह जग नाहीं बाज पी बूझ बिरहम ग्यान।
सो पानी सो बुलबुला, सोई सरवर जान।।"
"एकी ओहू एकी मास, एकी सरवर एकी हॉस।
गुर मुख बूझ बिरहम ग्यान, मैं तिरलोक एक के जान।।
धन कारन पी आप सँवारा। बिन धन सखी कन्त किन हारा।।
शह खेले धन माहीं ईवाँ। बास फूल महँ अच्छे जीवाँ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्यों न खेलूँ तुज संग मीता। मुझ कारन तैं एता कीता।।
'अलखदास' आखे सुन होई। सोई पाक अरथ फिन होई।।"
"जिधर देखूँ हे सखी, देखूँ होर न कोय।
देखा बूझ विचार मैं, सभी आपीं सोय।।"[12]

शेख़ बहाउद्दीन बरनावी जहाँगीर के युग में हुए हैं, इन्हें 'ख़ातिमुत्तारिकीन' कहा जाता है, ये महान् संगीत-मर्मज्ञ थे। निम्नलिखित प्रसिद्ध उक्ति इन्हीं की है—

"इन नैनन का यही विसेख।
हौं तुझ देखूँ, तू मुझ देख।"[13]

सैयद शाह हाशिम अल् उल्वी (मृ. 1649 ई.) क़ाज़ी नसरुल्लाह के पुत्र थे। इनकी उक्ति है—

"हाशिम जी झूलाँ लहर, पीवें वहदत के बहर।
होवें मतवाले सहर, दुनी ज्यों क़ातिल ज़हर।।"

नुक्तः

"ए दुनिया के लोग कीडे मकोड़े
घिउ शहद पर दौड़ाते घोड़े।"

नुक्तः

ना मुँज ज़न ना फ़र्ज़न्द।
ना मुँज भाई, ना मुँज बन्द।।
हाशमी पिउ सों सन्द।

जकरी

कहियो हो चक मेरे पीव, भौत दिनन का उलझा जीव।
बादर कूब घटा घिर आवे, तिल धारन खीजी खड़ी खिजाये।
मोर चिकारे है बन माती, पसु पंखी सब तेरे राती।
कई कई भाँतू भाव दिखाते, कहियो हो चक मेरे पीव।
भौत दिनन का उलझा जीव।
बीर बहूटी रंग रत मेरे, मोर पिया घर आव सवेरे।
कहियो हो चक मेरे पीव।
भौत दिनन का उलझा जीव।
नैन हमारे निस दिन रोवे, मीत बना कहो क्यों जनम खोवे।
हाशिम जी सुख होवे, तव मुख मीता जोवे।
कहियो हो चक मेरे पीव।
भौत दिनन का उलझा जीव।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शम्सुल् उश्शाक़ शाह मीरानजी बीजापुरी (मृ. 1496 ई.) का जन्म मक्के में हुआ। इनके पीर शाह कमालुद्दीन मुजर्रद बियाबानी, उनके पीर जमालुद्दीन मग़रिबी और उनके पीर बन्दानवाज़ गेसूदराज़ थे। बन्दानवाज़ जो भाषा दिल्ली से लाये, वही दक्षिण भारत की हिन्दी के रूप में फली-फूली।

इनकी सभी उपलब्ध कृतियाँ हिन्दी में हैं। निम्नलिखित पंक्तियों में अपने पीर कमालुद्दीन की ओर संकेत करते हैं—

इस **कमालियत** का संग। इस ख़ान्दान का रंग।।
उन गमाये अपना हाल। तो हुए **पीर कमाल**।।
कुछ थे नसीब मेरे। पग देखे तो उन केरे।।"

शाह मीरानजी का विचार था कि बहिरंग पर ध्यान न देकर अन्तरंग पर दृष्टि रखनी चाहिए। भाषा कोई भी हो, अर्थ मुख्य वस्तु है। जिस भाँति मिट्टी छानकर सोना निकाला जाता है, उसी भाँति वचन का मर्म ग्राह्य है। शाह मीरानजी हिन्दी को 'घुरभागा' (घूरे की भाषा) कहते हैं। यदि घूरे पर वर्षा हो रही है और उसी में से किसी को चमकता हुआ हीरा मिल जाये, तो कौन नहीं लेगा।[14]

इनकी कृतियों के कुछ नमूने हैं—

"कभी न रंगी मेधी रंगों फूलों बास न आया।
रंग न रँगया दन्तों उसके भीनी न हल्दों काया।।
कहे मुँझ सेर सुहाग अल्लाह का छड़ रह्या सुहावा।
अब क्यों सर सुहावे दूजा तुम को नाहीं ठावा।।
उसके रंगों रंगी साड़ी दूजा रंग न बानी।
उसकी बासा हमरो बासा फूल फोकट की आनी।।
ऐसी बातें करे गुनवन्ती मूरख बूझें सोध।
यही मन आवे अपने छन्द सों ही सिखावे बोध।।"[15]

शाह बुरहानुद्दीन जानम अपने पिता मीरानजी के ख़लीफ़ा थे। इनकी एक रचना का काल 1582 ई. है। अर्थात् ये इस काल के बाद तक जीवित थे।

'जानम' ने मसनवियों के अतिरिक्त 'ख़याल' और 'दोहे' भी लिखे हैं—

ख़याल

"अब सन्देसा मुझसे है शह का जब कब भागों अन्तर मिले।
पीर प्रेम के हेड़े मेरे नैनों माँझ जों कंकर मिले।
निस दिन जागे बिरह मारी न नींदा देखे नैन पड़े।
पलकें मेरी आग बले क्यों सपने देखूँ सो खड़े।
क़ौल पिया तुझ आस लगी मन आस लगी तुझ पास रहन।
जब का झाँसा तें मुझ लाया इक तिल मुझे सास रहैं।
ना का पनिया मुझको लागा लोग दिवानी देख हँसें।
जग की हाँसी क्या मुझ होय, कहो सिरीजन कहाँ बसें।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुहरा

जब लग तन नहीं छोड़या जिउ कों तब लग होना दूर।
जब लग नज़र नहीं छोड़ी आँख कों तब लग होना नूर।
जब लग सपना नहीं छोड़या काँ कों यो सब आज़ा हाल।
जब लग फ़हम नहीं छोड़या दिल कों यो जहत हो निराल।
यों सब तन में बरतन देख छोड़े ए सुख दुख।
दुख सुख दोनों यक कुरसी तो पावे सहज का सुख।।[16]

जानम की रचनाओं में जीव विरहिन हो गया है और सुख-दुखहीन अवस्था 'सहज' सिद्ध हो गयी है।

जानम के पुत्र शाह अमीनुद्दीन आला (मृ. 1675 ई.) थे। इनकी रचना है—

मरना हार जीवना बिसार। जीवना हार मरना बिसार
लाल सिरीजन दीखन पावे। आपस में दीख आप गँवावे·
मन रानी हज़रत क़ौल भवावे।[17]

सैयद मीरानजी हुसेनीशाह (मृ. 1663 ई.) अमीनुद्दीन आला के मुरीद थे। ये स्वयं भी हिन्दी के कवि थे, इनकी सन्तानों और इनके मुरीदों ने भी काव्य-रचना की।[18]

गुजरात में चिश्ती-परम्परा का केन्द्र क़ुतुबुद्दीन बख़्तयार काकी (मृ. 1236 ई.) के युग से स्थापित हुआ। इनके दो मुरीदों, शेख़ महमूद और शेख़ हामिदउद्दीन ने गुजरात में कार्य आरम्भ किया, परन्तु निज़ामुद्दीन चिश्ती के ख़लीफ़ा शेख़ सैयद हुसेन, शेख़ हुस्मामुद्दीन मुलतानी और शेख़ बारिकुल्लाह ने चिश्ती-परम्परा का प्रचार और प्रसार गुजरात में विशेषतया किया।

शेख़ कमालुद्दीन (मृ. 1363 ई.), उनके पुत्र सिराजुद्दीन (मृ. 1388 ई.), उनके पुत्र शेख़ इल्मुलहक़ (मृ. 1426 ई.), उनके पुत्र शेख़ महमूद राजन (मृ. 1446 ई.) तथा उनके पुत्र शेख़ जमालुद्दीन 'जुम्मन' (मृ. 1485 ई.) गुजरात में चिश्ती-परम्परा के महापुरुष हुए हैं।

इसी परम्परा में कमालुद्दीन के सरपोते, मजदुद्दीन के परपोते, नसीरुद्दीन के पोते और शाह मुहम्मद के पुत्र हसन मुहम्मद (मृ. 1574 ई.) और उनके पुत्र मुहम्मद आज़म चिश्ती (मृ. 1630 ई.) भी चिश्ती-सिद्धान्तों के प्रचारक हुए। मुहम्मद आज़म के उत्तराधिकारी याह्या मदनी (मृ. 1689 ई.) थे।

अपने विचारों के प्रचार के लिए कुछ गुजरात-निवासी सूफ़ियों ने हिन्दी-काव्य की रचना की, उनमें कुछ लोगों की चर्चा की जा रही है।

क़ाज़ी महमूद दरियाई वीरपुरी (मृ. 1340 ई.) गुजरात के बड़े सूफ़ियों में हैं। इनके पिता क़ाज़ी हमीद 'शाह चालिन्दा' के पीर शाह आलम थे। शाह आलम के पिता क़ाज़ी मुहम्मद के ख़लीफ़ा 'क़ुतुब आलम' थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क़ाज़ी महमूद दरियाई को सूफ़ी-संगीत में अत्यन्त रुचि थी। इनकी प्रत्येक रचना के सम्बद्ध राग-रागिनी का नाम अंकित है। इनकी दो पंक्तियाँ हैं—

"नैनों काजल मुख तम्बूला नाक मोती गलहार।
सीस नवाऊँ नेहा पाऊँ अपने पीर करूँ जुहार॥"[19]

शाह मुहम्मद ज्यू गामधनी (मृ.1515 ई.) की गणना भी गुजरात के बड़े सूफ़ियों में है। रचनाओं का नमूना इस प्रकार है—

"एक समन्दर सात कहावे, घोनोस वादल मेंह बरसावे।
वही समंद हो बूंद दिखाले, नदियाँ नाले होकर चाले।
पीउ मिला गल लाग रही है, सुख मँह दुख की बात न कीजै।"[20]

गुजरात के एक अन्य महत्त्वपूर्ण सूफ़ी ख़ूब मुहम्मद चिश्ती (ज. 1539, मृ. 1614 ई.) थे। इनकी रचना यों है—

"भाव-भेद इस ना नूं कर बात विकट समझायें।
भाव-भेद के शेर के ख़ूब जो तुझ आप आयें॥"

बावा शाह हुसेनी 'पीर बादशाह' शाह अली ज्यू के मुरीद थे। इनकी ग़ज़ल के कुछ शेर हैं—

रूबरू है शहर दरसन बेनक़ाब।
देक ना सक बोलते हैं दर हिजाब॥
तिस ऊपर रखते हैं ख्वाहिश दीद की।
दीद कर आपस का मानिन्दे हुबाब॥
इस इबादत बीच नईं है हक़रसी।
हौज़ मसजिद का करें पानी ख़राब॥
हक़रसी की है इबादत ऐन दीद।
जो सनम का मुन्तिला मस्ते शराब॥[21]

यहाँ तक कुछ विशिष्ट सूफ़ियों की चर्चा की गयी है, यदि इनको मृत्युतिथियों के क्रम से लगा दिया जाये, तो स्थिति यों होगी—

नाम	मृत्यु-तिथि	राज्य-काल
1. मुईनुद्दीन चिश्ती	1235 ई.	रुक्नुद्दीन
2. बख़्तयार काकी	1236 ई.	रज़िया सुलताना
3. फ़रीदुद्दीन गंजशकर	1256 ई.	नासिरुद्दीन महमूद
4. शेख़ शर्फ़ुद्दीन बू अली	1323 ई.	गयासुद्दीन तुग़लक़
5. निज़ामुद्दीन चिश्ती	1324 ई.	"
6. बुरहानुद्दीन ग़रीब	1337 ई.	मुहम्मद तुग़लक़
7. नसीरुद्दीन चिराग़ देहली	1356 ई.	फ़ीरोज़ तुग़लक़
8. शेख़ शर्फ़ुद्दीन याह्या	1370 ई.	"
9. बन्दानवाज़ गेसूदराज़	1421 ई.	ख़िज़्रख़ाँ, मुबारक द्वितीय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

10. कुतुब आलमं	1446 ई.	आलमशाह
11. मीरानजी बीजापुरी	1496 ई.	सिकन्दर लोदी
12. शेख़ बहाउद्दीन बाजन	1506 ई.	,,
13. अब्दुल कुद्दूस गंगोही	1538 ई.	हुमायूँ
14. शाह बुरहानुद्दीन जानम	1582 ई.	अकबर
15. सैयद शाह हाशिम 'हाशिम'	1649 ई.	शाहजहाँ
16. अमीनुद्दीन आला	1663 ई.	औरंगज़ेब

इस युग तक हिन्दी समस्त भारत की भाषा हो गयी थी। सूफ़ियों का लक्ष्य इस भाषा के द्वारा अपने विचारों का प्रचार करना था, हिन्दी-प्रचार उनका लक्ष्य नहीं था। यद्यपि अरबी और फ़ारसी के विद्वान् हिन्दी भाषा में अपने विचारों का प्रतिपादन घटिया बात समझते थे, तथापि सूफ़ियों ने लोकमानस तक पहुँचने के लिए जहाँ हिन्दी भाषा को अपनाया, वहाँ भारतीय लोक-गीतों के छन्द भी अपनाये। छन्दों का बन्धन इन्होंने शिथिल रखा। इनकी रचनाएँ क़व्वालों द्वारा गाये जाने के लिए थीं और उनमें प्रचारात्मकता प्रधान थी। सत्काव्य के गुणों को उनमें ढूँढ़ने की चेष्टा व्यर्थ है।

सन्दर्भ

1. ख़्वाजा हसन निज़ामी, पृ 110
2. अब्दुल हक़, पृ. 9
3. वही, पृ. 11-12
4. वही, पृ. 11
5. वही, पृ. 14
6. वही, पृ. 17
7. वही, पृ. 19
8. वही, पृ. 20
9. वही, पृ. 19-20
10. वही, पृ. 22-23
11. वही, पृ. 27-28
12. वही, पृ. 28-29
13. वही, पृ. 31-32
14. वही, पृ. 39-43
15. वही, पृ. 44-45
16. वही, पृ. 83-84
17. वही, पृ. 57-59
18. वही, पृ. 59-60
19. वही, पृ. 61-64
20. वही, पृ. 65-66
21. वहो, पृ. 67-71

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दक्षिण भारत के कुछ और मुसलमान हिन्दी-कवि

सूफ़ियों की दृष्टि में लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम की प्राप्ति होती है। सौन्दर्य की ओर मनुष्य स्वभावतः आकृष्ट होता है, यदि कोई सहृदय व्यक्ति किसी अन्य रूपवान् व्यक्ति पर इतना आसक्त हो जाये कि खाते-पीते, उठते-बैठते, सोते-जागते उसके नेत्रों के समक्ष अपने प्रियतम की ही छवि रहे, प्रियतम के दर्शन के लिए वह प्रतिक्षण जलहीन मीन की भाँति तड़पता हो, तो उसका मन एक बिन्दु पर एकाग्र हो जाता है। पीर या गुरु की कृपा से यही एकाग्रता ईश्वर की ओर मुड़ जाती है और साधक ईश्वर-प्राप्ति में सफल हो जाता है।

एक अच्छी ग़ज़ल सुनकर लौकिक प्रेमी को अपना प्रेम-पात्र याद आता है, तो ईश्वर-भक्त के लिए उसी ग़ज़ल का अर्थ ईश्वरपरक होता है और ईश्वर-प्रेम में निमग्न हो जाता है। इसीलिए सादी और खुसरो की ग़ज़लें दरबारों में भी लोकप्रिय हुईं और सूफ़ियों को भी भाईं। ऐसे ही गेय काव्य को आकर्षक रूप में प्रस्तुत करने के कारण क़व्वाल और गवैये विलासियों और बादशाहों को भी प्रिय हुए और सूफ़ियों के भी लाड़ले बने। यही स्थिति शाइरों की भी थी। अच्छे शाइरों की माँग बादशाहों के दरबार में भी थी और सूफ़ियों के दरबार में भी।

प्रेम, काव्य और संगीत की त्रिवेणी पूर्वोक्त कारणों से ही सर्वसाधारण के मानस को आप्लावित करती रही। इसी त्रिवेणी की धारा मुहम्मद तुग़लक़ के साथ देवगिरि पहुँची और बहमनी साम्राज्य के विघटन के परिणामस्वरूप यह गोलकुण्डा और बीजापुर को सिञ्चित करती रही।

दिल्ली से दक्षिण की ओर गये हुए क़व्वालों के पास गाने के लिए फ़ारसी सामग्री की कमी न थी। खुसरो ने अपनी ग़ज़लों के रूप में उन्हें प्रभूत सामग्री दी, परन्तु जनसाधारण को रिझाने के लिए उन लोगों को दक्खिनी हिन्दी के कवियों ने सामग्री दी।

सूफ़ी सन्तों के काव्य का विषय अद्वैतवाद (तसव्वुफ़) था, जिसे वे सामान्य बोलचाल की भाषा में व्यक्त करते थे, परन्तु दक्षिण के मुसलमान हिन्दी-कवियों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ने शृंगार-रस की रचनाएँ भी कीं।

प्रस्तुत पंक्तियों में 'बहमनी-युग' 'क़ुतुबशाही युग' और 'आदिलशाही युग' के कवियों के विषय में कुछ संक्षिप्त जानकारी दी जा रही है। बहमनी सुलतानों के नाम और राज्य-काल इस प्रकार हैं—

नाम	राज्य-काल
1. बहादुरशाह प्रथम	1347-1359 ई.
2. मुहम्मदशाह प्रथम	1359-1373 ई.
3. मुजाहिदशाह	1373-1378 ई.
4. मुहम्मदशाह द्वितीय	1378-1797 ई.
5. फ़ीरोज़	1397-1422 ई.
6. अहमदशाह	1422-1435 ई.
7. अलाउद्दीन द्वितीय	1435-1457 ई.
8. हुमायूँ	1457-1463 ई.
9. निज़ामशाह	1463-1463 ई.
10. मुहम्मदशाह तृतीय	1463-1482 ई.
11. महमूद	1482-1518 ई.
12. अलाउद्दीनशाह	1520-1522 ई.
13. वलीउल्लाह शाह	1522-1524 ई.
14. कलीमुल्लाह शाह	1524 ई.

इस युग में निम्नलिखित कवियों का पता चलता है—

1. बन्दानवाज़ गेसूदराज़	मृ. 1421 ई.
2. सैयद मुहम्मद अकबर हुसेनी	मृ. 1420 ई.
3. निज़ामी	अहमदशाह के समकालीन
4. सद्रुद्दीन	मृ. 1472 ई.
5. अब्दुल्ला अल् हुसेनी	अहमदशाह के समकालीन
6. मुश्ताक़	मुहम्मदशाह तृतीय के समकालीन
7. लुत्फ़ी	मुश्ताक़ का समकालीन
8. शाह मीरानजी बीजापुरी	मृ. 1496 ई.
9. आज़री 'मलिकुश्शुअरा'	अहमदशाह का समकालीन

इस युग में दक्खिनी हिन्दी में गद्य और पद्य दोनों लिखे गये। रचनाओं का विषय प्रायः तसव्वुफ़ था, परन्तु प्रेमाख्यान भी लिखे जा रहे थे। बहमनीनामा नामक इतिहास-ग्रन्थ भी लिखा गया था।

मसनवी के साथ ही साथ इस युग में ग़ज़ल और क़सीदे भी लिखे गये। फ़ारसी छन्दों का आश्रय लेने पर भारतीय परम्परा के अनुसार उक्ति नारी की ओर से होती थी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

1526 ई. में बहमनी साम्राज्य पाँच इकाइयों में बँट गया। गोलकुण्डा के क़ुतुबशाही वंश और बीजापुर के आदिलशाही वंश ने काव्य और संगीत के लिए बहुत कुछ किया।

क़ुतुबशाही सुलतानों के नाम और राज्य-काल निम्नलिखित हैं—

नाम	राज्य-काल
1. सुलतान क़ुली	1518-1543 ई.
2. जमशेद क़ुली	1543-1550 ई.
3. सुबहान क़ुली	1550-1550 ई.
4. इब्राहीम क़ुली	1550-1580 ई.
5. मुहम्मद क़ुली	1580-1611 ई.
6. अब्दुल्लाह	1625-1672 ई.
7. अबूहसन तानाशाह	1672-1686 ई.

इस युग के कवि निम्नलिखित हैं—

1. क़ुतुबुद्दीन 'फ़ीरोज़'	इब्राहीम का समकालीन
2. सैयद महमूद 'महमूद'	
3. मुल्ला खयाली	
4. असदुल्लाह 'वजही'	इब्राहीम इत्यादि चार सुलतानों का समकालीन
5. सुलतान मुहम्मद क़ुली कुतुबशाह	मृ. 1611 ई.
6. ज़िल्लल्लाह	
7. अब्दुल्लाह क़ुतुबशाह	
8. ग़वासी	मृ. 1649 ई. से पूर्व
9. अहमद	
10. आजिज़	
11. क़ुतबी	
12. सुलतान	
13. खुदावन्द 'खुदानुमा'	मृ. 1667 ई.
14. शेख़ अब्दुल्लाह	
15. जुनैदी	अब्दुल्लाह क़ुतुबशाह का समसामयिक
16. बुलाक़ी	
17. इब्ननिशाती	अब्दुल्ला क़ुतुबशाह का दरबारी
18. तबई	„ „ समसामयिक
19. शाहराजू हुसेनी	
20. तानाशाह	
21. मुहिब	

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाम	राज्य-काल
22. कबीर	
23. औलिया	तानाशाह का दरबारी
24. खवांस	
25. गुलाम अली	
26. सेवक	
27. फ़ाइज़	
28. लतीफ़	
29. अफ़ज़ल	
30. फ़त्ताही	
31. सालिक	
32. मियाँ नूरी	

क़ुतुबशाही राज्य में आन्ध्र, कर्नाटक और महाराष्ट्र के कुछ भाग सम्मिलित थे, इसलिए क़ुतुबशाही हिन्दी में इन तीनों प्रदेशों की भाषाओं के शब्द भी सम्मिलित हैं।

हिन्दी की आदिलशाही धारा ने भारतीय संगीत को बहुत कुछ दिया। आदिलशाही सुलतानों के नाम और उनके राज्य-काल इस प्रकार हैं।

नाम	राज्य-काल
1. यूसुफ़	1489-1510 ई.
2. इस्माईल	1510-1534 ई.
3. मल्लू	1534-1534 ई.
4. इब्राहीम प्रथम	1534-1557 ई.
5. अली प्रथम	1557-1580 ई.
6. इब्राहीम द्वितीय	1580-1627 ई.
7. मुहम्मद	1627-1656 ई.
8. अली द्वितीय	1658-1672 ई.
9. सिकन्दर	1672-1685 ई.

आदिलशाही युग के हिन्दी कवि निम्नलिखित हैं—

1. बुरहानुद्दीन जानम मृ. 1582 ई.
2. इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय
3. अब्दुल्
4. हकीम सैयद आतिशी
5. मुक़ीमी
6. अमीन
7. शौक़ी
8. सनअती
9. मलिक खुशनूद
10. रुस्तमी
11. शाही (अली आदिलशाह द्वितीय)
12. दौलत
13. नुसरती
14. शाह मलिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाम राज्य-काल

15. अमीन (बुरहानुद्दीन जानम के पुत्र)
16. ज़हूर
17. सैयद मीरान हाशमी
18. अयाग़ी
19. शग़ली
20. अली
21. करीम
22. मुर्तज़ा
23. हुसेनी
24. मुख़्तार
25. क़ुदरती
26. मूमिन
27. क़ादिर
28. शाह मन उर्फ़
29. मुअज़्ज़म

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मूर्च्छना और मेल

ग्राम-सिद्धि, स्वरों और श्रुतियों के परिमाण

संगीत में जिन सात स्वरों का प्रयोग प्राचीन लोग करते थे, उन स्वरों का नामकरण उन्होंने अत्यन्त बुद्धिमत्तापूर्वक किया था।

'षड्ज' शब्द का एक अर्थ है—'जो अन्य छः स्वरों को उत्पन्न करे' अर्थात् जो पहला या आदिम स्वर हो, 'निषाद' शब्द का अर्थ यह है कि जिस पर स्वरों की समाप्ति हो, अर्थात् जो अन्तिम स्वर हो, 'मध्यम' शब्द का अर्थ है कि जो आदिम और अन्तिम स्वरों के ठीक बीचोबीच हो, केन्द्र-बिन्दु हो।

इसीलिए प्राचीन आचार्यों ने कहा कि 'मध्यम' सातों स्वरों में श्रेष्ठ है, अविनाशी है, क्योंकि केन्द्र प्रत्येक वस्तु का होता है, 'केन्द्र' या 'मध्य' से हीन किसी वस्तु का अस्तित्व ही सम्भव नहीं है।

इसका अर्थ यह हुआ कि षड्ज की अपेक्षा मध्यम जितना ऊँचा है, मध्यम की अपेक्षा निषाद उतना ही ऊँचा है। यही स्थिति षड्ज, मध्यम, निषाद की शुद्धता प्राचीनों की दृष्टि में है।

षड्ज और मध्यम का यह पारस्परिक अन्तराल नैसर्गिक है, यदि षड्ज और मध्यम को साथ-साथ छेड़ा जाये, तो इन दोनों में एक अनुकूलता या पारस्परिक रम्य अनुपात की अनुभूति होगी, यह सम्बन्ध षड्ज-मध्यम भाव अथवा 'कॉन्सोनेंस ऑव् फोर्थ' कहलाता है।

भरत ने कहा है कि जो ध्वनियाँ षड्जग्रामीय दृष्टि से षड्ज और मध्यम कहलाती हैं, वही ध्वनियाँ जैसी की तैसी रहकर मध्यमग्रामीय दृष्टि से 'मध्यम' और 'निषाद' भी कहला सकती हैं, कहलाती हैं। इसका निष्कर्ष भी यही है कि 'षड्ज' और 'मध्यम' का पारस्परिक अन्तराल या दूरी 'मध्यम' और 'निषाद' के पारस्परिक अन्तराल या दूरी के बराबर है।

इस दृष्टि से षड्ज, मध्यम और निषाद की स्थिति या प्राकृतिक और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सापेक्ष है।

जिन्हें स्वर का भली-भाँति ज्ञान है, जो सूक्ष्म ध्वनियों को भलीभाँति सुन सकते हैं उन्हें तन्त्री छिड़ने पर तन्त्री की प्रधान ध्वनि तो सुनायी देती ही है, कुछ सहज, प्राकृतिक उपध्वनियाँ भी सुनायी देती हैं। ऐसे व्यक्तियों को पाणिनि से पूर्व 'धीवान्' (बुद्धिमान्) कहा जाता है। मध्यम स्वर छिड़ने पर तुम्बुरु को उसमें से एक उपध्वनि सुनायी दी। ढंग से मिले हुए तम्बूरे के मन्द्र षड्ज की ध्वनि से एक स्वाभाविक सूक्ष्म ध्वनि भी सुनायी देती है, जिसे बम्बईवासी संगीतानुरागी 'तम्बूरा गान्धार' कहते हैं। मन्द्र षड्ज की ध्वनि को यदि 'मध्यम' कहा जाये, तो वह नैसर्गिक और सहज उपध्वनि 'तम्बूरा धैवत' हो जायेगी। 'मध्यम' से यह ध्वनि, तुम्बरु को सुनायी दी, तो उसने इस ध्वनि को 'धैवत' (धीवानों को सुनायी देनेवाला स्वर) कहा, क्योंकि यह ध्वनि संगीत से अपरिचित कानों को नहीं सुनायी दे सकती थी।

'मध्यम' और 'धैवत' का सम्बन्ध भी प्राकृतिक और सनातन है, पाश्चात्य संगीतशास्त्री इस 'मध्यम-धैवत' सम्बन्ध को 'कॉन्सोनेंस ऑव् थर्ड' कहते हैं।

षड्ज और पंचम का सम्बन्ध भी सहज और सनातन है इसीलिए पंचम का अर्थ 'स्वरों के पारस्परिक सहज अन्तराल को नापने का साधन' भी है। षड्ज और मध्यम में यदि 'मध्यम' को 'षड्ज' कहा जाये, तो षड्ज स्वतः 'पंचम' हो जायेगा।

निषाद और गान्धार में षड्ज-मध्यम-भाव है और धैवत तथा ऋषभ में भी।

इस समस्त विचार का निष्कर्ष यह है कि ये सातों स्वर, परस्पर एक प्राकृतिक सम्बन्ध के कारण सम्बद्ध हैं। यदि इन सातों स्वरों को किसी गाँव का निवासी कहा जाये, तो सातों स्वर ग्रामवासी हैं, जिनमें परस्पर एक नेह का नाता है और इन परस्पर सम्बन्धी ग्रामवासियों में चौधरी (ग्रामणी) 'षड्ज' है। इसीलिए इन स्वरों के स्थायी निवास-स्थान या बस्ती को संगीत की भाषा में भी 'ग्राम' कहा गया है।

मध्यम और धैवत में जो अन्तराल है, वही षड्ज और अन्तर गान्धार तथा पंचम और काकली निषाद में भी है। जो ढंग से सितार या स्वर-मण्डल मिला सकते हैं, उनके लिए स्वर-मण्डल पर इन नवों स्वरों की स्थापना अत्यन्त सरल है।[1] स्वर-मण्डल के सत्ताईस तारों पर आप मन्द्र, मध्य और तार-स्थान में यदि नौ स्वर मिला लें, तो आप कोई भी मूर्च्छना सुन सकेंगे।

इस प्रकार स्थापित 'म, ग, रे' सामवेदियों की भाषा में उदात्त, अनुदात्त और 'स्वरित' हैं और 'स नि ध' भी क्रमशः 'उदात्त, अनुदात्त, स्वरित' हैं। सामवेद में स्वरों का क्रम अवरोहात्मक होता है, इसीलिए सामवेदियों की वह व्यवस्था है, पंचम भी उनकी भाषा में 'उदात्त' है।

सामवेदियों का उदात्त 'भरत' और 'शार्ङ्गदेव' का चतुःश्रुतिक, सामवेदियों का 'अनुदात्त' 'भरत' और 'शार्ङ्गदेव' का 'द्विश्रुतिक' और सामवेदियों का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'स्वरित' भरत और शार्ङ्गदेव का त्रिश्रुतिक है। इसीलिए संगीत के स्वरों का उद्गम-स्थान सामवेद कहा जाता है। 'सामगान' में अवरोहमात्र होता है और 'गान्धर्व' में 'संचार' (आरोह एवं अवरोह) होता है।

फ्रांस के एक वैज्ञानिक 'सेवर्ट' ने 'स' से 'सं' तक को 301 समान अन्तरालों में बाँटा है। इस दृष्टि से चतुःश्रुतिक या उदात्त स्वर अपने पूर्ववर्ती स्वर से 51 घटक (इकाई) ऊँचा होता है, त्रिश्रुतिक अथवा स्वरित स्वर अपने पूर्ववर्ती स्वर से 46 घटक ऊँचा होता है और द्विश्रुतिक अथवा अनुदात्त स्वर अपने पूर्ववर्ती स्वर से 28 घटक ऊँचा होता है। ये घटक 'सेवर्ट्स' कहलाते हैं।

श्रुतियों के प्रकार तीन हैं, महती श्रुति, उपमहती श्रुति और प्रमाण श्रुति। महती का परिमाण 23 सेवर्ट्स, उपमहती का परिमाण 18 सेवर्ट्स और प्रमाण श्रुति का परिमाण 5 सेवर्ट्स होता है।

चतुःश्रुति स्वरों में श्रुतियों का क्रम प्रमाण श्रुति (5), उपमहती श्रुति (18), महती श्रुति (23) और प्रमाण श्रुति (5) होता है, इन चारों श्रुतियों का जोड़ 51 सेवर्ट्स होता है।

त्रिश्रुति स्वरों में श्रुतियों का क्रम उपमहती श्रुति, महती श्रुति और प्रमाण श्रुति होता है, इनका योग 46 सेवर्ट्स है।

द्विश्रुति स्वरों में श्रुतियों का क्रम एक महती श्रुति एवं एक प्रमाण श्रुति होता है, इनका योग 28 होता है।

'स-ग' का अन्तराल 97 सेवर्ट्स, 'स-म' का अन्तराल 125 सेवर्ट्स और 'स-प' का अन्तराल 176 सेवर्ट्स होता है। इस दृष्टि से षड्जग्राम और मध्यम-ग्राम के शुद्ध और विकृत स्वरों की स्थिति यह है—

स	रे	ग	ग	म	प	ध	नि	नि	सं	षड्जग्राम
0,	46,	74,	97,	125,	176,	222,	250,	273,	301	
स	रे	ग	ग	म	प्	ध	नि	नि	सं	मध्यमग्राम
0	46,	74,	97,	125,	171,	222,	250,	273,	301	

षड्जग्राम के 'सं-प' में 176 सेवर्ट्स का अन्तर होने के कारण षड्ज-पंचम-भाव है, परन्तु 'रे-प' में 130 सेवर्ट्स का अन्तर होने के कारण षड्ज-मध्यम-भाव नहीं।

मध्यमग्राम के 'रे-प्' में 125 सेवर्ट्स का अन्तर होनेके कारण षड्ज-मध्यम भाव है, परन्तु 'स-प्' में 171 सेवर्ट्स का अन्तर होने के कारण षड्ज-पंचम-भाव नहीं।

षड्जग्राम से मध्यमग्राम बनाने की दो विधियाँ हैं। एक विधि के अनुसार षड्जग्राम के पंचम को एक श्रुति उतार देने से मध्यमग्राम बन जाता है, दूसरी विधि के अनुसार षड्जग्राम की सान्तरा (अन्तर गान्धार सहित) मूर्च्छना ही मध्यमग्राम की प्रथम शुद्ध मूर्च्छना बन जाती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वरों का आरोह-अवरोह मूर्च्छना कहलाता है। 'स, रे, ग, म, प, ध, नि ध, प, म, ग, रे, स' षड्ज से आरम्भ होने और उसी पर समाप्त होनेवाली मूर्च्छना है, क्योंकि इसके आरम्भ और अन्त में होने के कारण इसमें षड्ज प्रमुख है, ऐसी दशा में षड्ज की ध्वनि ही उभरती है, षड्ज ही इस अवस्था में स्थायी स्वर या 'की नोट' होता है।

मूर्च्छना के स्वरों का पारस्परिक अन्तराल बताने के लिए मूर्च्छना का आरोह-मात्र लिखकर मूर्च्छना का आरम्भिक स्वर अन्त में भी दुहरा दिया जाता है, अन्यथा गणना में बाईस श्रुतियाँ नहीं आ सकेंगी।

स रे ग म प ध नि सं
0 3 2 4 4 3 2 4

में आरम्भिक स्वर की श्रुति-संख्या शून्य है, उससे पूर्व कोई स्वर नहीं है, जिसकी अपेक्षा 'स' की ऊँचाई बतायी जाये, परन्तु 'सं' से पूर्व नि है, जिसकी अपेक्षा 'सं' चार श्रुति ऊँचा है। इसीलिए भरत ने 3, 2, 4, 4, 3, 2, 4 कहकर आरम्भ में ऋषभ की तीन और अन्त में षड्ज की चार श्रुतियाँ बतायी हैं।[2] इस ढंग से काकली निषाद भी इन सातों स्वरों की अवधि में 'सं' से पूर्व सिद्ध हो सकता है।

दोनों ग्रामों की मूर्च्छनाओं का रूप तथा प्रत्येक मूर्च्छना के आदिम स्वरों को 'स' मानने के परिणामस्वरूप सिद्ध स्वरावलियों का अध्ययन आवश्यक है। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि मूर्च्छना-पद्धति में मूर्च्छना के आरम्भिक स्वर का नाम जैसा का तैसा रहता था। षड्ज और ऋषभ की मूर्च्छना के रागों का प्रयोग, वीर, अद्भुत एवं रौद्र रस में, गान्धार और निषाद की मूर्च्छनाओं के रागों का प्रयोग करुण रस में, मध्यम और पंचम की मूर्च्छनाओं के रागों का प्रयोग शृंगार रस में तथा धैवतादि मूर्च्छना के रागों का प्रयोग बीभत्स और भयानक रस में होता था।

मेल में आठ स्वर होते हैं, अर्थात् 'मेल' अष्टक हैं, क्योंकि उनमें तार षड्ज भी सम्मिलित रहता है। मूर्च्छना सप्तस्वर होती है और उसमें मूर्च्छना के प्रथम स्वर की अग्रिमस्थानीय आवृत्ति नहीं होती।

मेल में मध्यम का एक ही रूप रह सकता है, तथा उसमें पंचम का अस्तित्व अनिवार्य है। यदि प्रत्येक मूर्च्छना के आदिम स्वर को 'स' कहा जाये, तो ऐसे सप्तकों का भी दर्शन होगा, जिनमें आदिम स्वर का संवादी मध्यम न मिलेगा, कभी आदिम स्वर का संवादी पंचम नहीं मिलेगा, अथवा पंचम का सर्वथा अभाव होगा और मध्यम के दोनों रूप दृष्टिगोचर होंगे।

यहाँ हम सभी मूर्च्छनाओं का स्पष्टीकरण मेलवादियों के लिए कर रहे हैं।

ग्राम और मूर्च्छनाओं की सिद्धि के लिए जिज्ञासुओं को 'भरत का संगीत-सिद्धान्त' व 'संगीत-चिन्तामणि' के सम्बद्ध स्थलों का अवलोकन करना चाहिए—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

षड्जग्रामीय शुद्ध मूर्च्छनाएँ

1\.

ग्रामस्वर संज्ञाएँ—	स	रे	ग	म	प	ध	नि	सं	
आरम्भिक स्वर से दूरी श्रुतियों में—	0	3	5	9	13	16	18	22	
आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ	स	रे	ग	म	प	ध	नि	सं	
आरम्भिक स्वर से दूरी सेवर्ट्स में—	0	46	74	125	176	222	250	301	खरहर

2\.

ग्रामस्वर-संज्ञाएँ—	नि	स	रे	ग	म	प	ध	नि	
आदिम स्वर से दूरी श्रुतियों में—	0	4	7	9	13	17	20	22	
आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ	स	रे′	ग	म	प	धं	नि	सं	शंकरा-भरण
आदिम स्वर से दूरी सेवर्ट्स में—	0	51	97	125	176	227	273	301	

3\.

ग्रामस्वर-संज्ञाएँ—	ध	नि	स	रे	ग	म	प	ध	
आरम्भिक स्वर से दूरी श्रुतियों में—	0	2	6	9	11	15	19	22	
आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ	स	रे	ग	म	मं	ध	नि	स	
आदिम स्वर से दूरी सेवर्ट्स में—	0	28	79	125	153	204	255	301	मेलदलन

4\.

ग्रामस्वर-संज्ञाएँ—	प	ध	नि	स	से	ग	म	प	
आदिम स्वर से दूरी श्रुतियों में—	0	3	5	9	12	14	18	22	
आधुनिक स्वर-संज्ञाएं	स	रे	ग	म	प्	ध	नि	सं	नटभैरवी
आदिम स्वर से दूरी सेवर्ट्स में—	0	46	74	125	171	199	250	301	

5\.

ग्रामस्वर-संज्ञाएँ—	म	प	ध	नि	स	रे	ग	म	
आरम्भिक स्वर से दूरी श्रुतियों में—	0	4	7	9	13	16	18	22	
आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ	स	रे′	ग	म	प	ध	नि	सं	हरिकाम्बोजी
आदिम स्वर से दूरी सेवर्ट्स में—	0	51	97	125	176	222	250	301	खमाज I

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

6. ग्रामस्वर-संज्ञाएँ—	ग	म	प	ध	नि	स	रे	ग	
आदिम स्वर से दूरी श्रुतियों में —	0	4	8	11	13	17	20	22	
आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ	स	रे	गं	मं	प	धं	नि	सं	
									कल्याण II
आदिम स्वर से दूरी सेवर्ट्स में—	0	51	102	148	176	227	273	301	
7. ग्रामस्वर-संज्ञाएँ—	रे	ग	म	प	ध	नि	स	रे	
आदिम स्वर से दूरी श्रुतियों में—	0	2	6	10	13	15	19	22	
आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ	स	रे	ग	मं	प	ध	नि	सं	तोड़ी
आदिम स्वर से दूरी सेवर्ट्स में—	0	28	79	130	176	204	255	301	

षड्जग्रामीय अन्तरगान्धारयुक्त (सान्तरा) मूर्च्छनाएँ ही मध्यमग्राम की शुद्ध मूर्च्छनाएँ बन जाती हैं। इनमें यदि लोप्य स्वर धैवत स्वर आता हो, तो वह षड्जग्रामीय मूर्च्छना न कहलाकर मध्यमग्रामीय मूर्च्छना कहलायेगी, क्योंकि षड्जग्राम में धैवत का लोप नहीं होता, यदि लोप्य स्वर पंचम आता हो, तो वह षड्जग्राम की मूर्च्छना कहलायेगी, क्योंकि मध्यमग्राम में पंचम का लोप नहीं होता। यदि लोप्य स्वर किसी ग्राम की दृष्टि से 'मध्यम' आता हो, तो वह अन्य ग्राम की मूर्च्छना कहलायेगी, क्योंकि 'मध्यम' का लोप किसी ग्राग में नहीं होता।

षड्जग्रामीय सान्तरा अथवा मध्यमग्रामीय शुद्ध मूर्च्छनाएँ

8. षड्जग्रामीय संज्ञाएँ—	स	रे	ग	म	प	ध	नि	सं	
मध्यमग्रामीय संज्ञाएँ—	म	प्	ध	नि	स	रे	ग	म	
आदिम स्वर से दूरी श्रुतियों में—	0	3	7	9	13	16	18	22	
आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ—	स	रे	ग	म	प	ध	नि	सं	
									खमाज II
आदिम स्वर गे दूरी सेवर्ट्स में—	0	46	97	125	176	222	250	301	

यदि इस मूर्च्छना का चौथा स्वर लुप्त हो, तो वह मध्यम ग्रामीय मूर्च्छना कहलायेगी क्योंकि मध्यमग्रामीय निषाद का लोप तो सम्भव है, षड्जग्रामीय मध्यम का नहीं, जो षड्जग्रामीय मूर्च्छना का चौथा स्वर है। यदि इस मूर्च्छना के छठे स्वर का किसी राग में लोप हो, तो वह मध्यमग्रामीय ऋषभ कहलायेगा, षड्जग्रामीय धैवत नहीं। यदि इस मूर्च्छना में दूसरा स्वर किसी राग में लोप्य हो, तो वह लोप्य स्वर षड्जग्रामीय ऋषभ कहलायेगा, क्योंकि मध्यमग्रामीय पंचम का लोप नहीं होता। ऐसा ही अन्यत्र समझना चाहिए।

9. षड्जग्रामीय संज्ञाएँ—	नि	स	रे	ग	म	प	ध	नि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मध्यमग्रामीय संज्ञाएँ— ग म प् ध नि स रे ग
आदिम स्वर से दूरी
श्रुतियों में— 0 4 7 11 13 17 20 22
आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ– स रे॑ ग मं प धं नि सं
कल्याण II
आदिम स्वर से दूरी
सेवर्ट्स में— 0 51 97 148 176 227 273 301

10. षड्जग्रामीय संज्ञाएँ— ध नि स रे ग म प ध
मध्यमग्रामीय संज्ञाएँ— रे ग म प् ध नि स रे
आदिम स्वर से दूरी
श्रुतियों में— 0 2 6 9 13 15 19 22
आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ— स रे ग म प ध नि सं भैरवी
आदिम स्वर से दूरी
सेवर्ट्स में— 0 28 79 125 176 204 255 301

11. षड्जग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ प ध नि स रे ग म प
मध्यमग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ स रे ग म प् ध नि सं
आदिम स्वर से दूरी
श्रुतियों में— 0 3 5 9 12 16 18 22
आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ— स रे ग म प् ध नि सं
आदिम स्वर से दूरी खरहरप्रिया
सेवर्ट्स में— 0 46 74 125 171 222 250 301

12. षड्जग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ म प ध नि स रे ग म
मध्यमग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ नि स रे ग म प् ध नि
आदिम स्वर से दूरी
श्रुतियों में— 0 4 7 9 13 16 20 22
आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ— स रे॑ ग म प ध नि सं
बिलावल
आदिम स्वर से दूरी
सेवर्ट्स में— 0 51 97 125 176 222 273 301

13. षड्जग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ ग म प ध नि स रे ग
मध्यमग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ ध नि स रे ग म प् ध
आदिम स्वर से दूरी
श्रुतियों में— 0 2 6 9 11 15 18 22
आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ— स रे ग म मं ध नि सं
आदिम स्वर से दूरी मेलदलन
सेवर्ट्स में— 0 28 79 125 153 204 250 301

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्तर गान्धार स्वर कभी अंश या स्थायी (की नोट) नहीं होता, अतः इस मूर्च्छना के राग सर्वदा मध्यमग्रामीय ही कहलायेंगे। षड्ज-ग्रामीय दृष्टि से यह मूर्च्छना केवल गणना के लिए है। काकली निषाद भी कभी अंश या स्थायी नहीं होता, अतः काकली निषाद से आरम्भ होनेवाली मूर्च्छनाएँ भी केवल गणना के लिए हैं।

14. षड्जग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ	रे	ग	म	प	ध	नि	स	रे	
मध्यमग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ	प्	ध	नि	स	रे	ग	म	प	
आदिम स्वर से दूरी									
श्रुतियों में—	0	4	6	10	13	15	19	22	
आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ—	स	रे'	ग	मं	प	ध	नि	सं	
आदिम स्वर से दूरी									आसावरी
सेवर्ट्स में—	0	51	79	130	176	204	255	301	

षड्जग्राम की सकाकली (काकली निषादयुक्त) मूर्च्छनाओं का उपयोग मध्यमग्राम की दृष्टि से असम्भव है। क्योंकि षड्ज-ग्रामीय द्विश्रुतिक गान्धार का कोई उपयोग मध्यमग्राम की मूर्च्छनाओं में नहीं होता।

षड्जग्रामीय सकाकली मूर्च्छनाएँ

15. षड्जग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ	स	रे	ग	म	प	ध	नि	स	
आदिम स्वर से दूरी									
श्रुतियों में—	0	3	5	9	13	16	20	22	
आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ—	स	रे	ग	म	प	ध	नि	स	
आदिम स्वर से दूरी									गौरी मनोहरी
सेवर्ट्स में—	0	46	74	125	176	222	273	301	
16. षड्जग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ	नि	स	रे	ग	म	प	ध	नि	
आदिम स्वर से दूरी									
श्रुतियों में—	0	2	5	7	11	15	18	22	
आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ—	स	रे	ग	गं	मं	ध	नि	स	
आदिम स्वर से दूरी									
सेवर्ट्स में—	0	28	74	102	153	204	250	301	
17. षड्जग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ	ध	नि	स	रे	ग	म	प	ध	
आदिम स्वर से दूरी									
श्रुतियों में—	0	4	6	9	11	15	19	22	मेलदलन
आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ—	स	रे'	ग	म	मं	ध	नि	स	
आदिम स्वर से दूरी									
सेवर्ट्स में—	0	51	79	125	153	204	255	301	
									मेल नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

18. षड्जग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ प ध नि स रे ग म प
आदिम स्वर से दूरी
श्रुतियों में— 0 3 7 9 12 14 18 22
आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ– स रे ग म प् ध नि स
आदिम स्वर से दूरी चारुकेशी
सेवर्ट्स में— 0 46 97 125 171 199 250 301

19. षड्जग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ म प ध नि स रे ग म
आदिम स्वर से दूरी
श्रुतियों में — 0 4 7 11 13 16 18 22
आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ– स रे॑ ग म॑ प ध नि स
आदिम स्वर से दूरी
सेवर्ट्स में— 0 51 97 148 176 222 250 301
वाचस्पति

20. षड्जग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ ग म प ध नि स रे ग
आदिम स्वर से दूरी
श्रुतियों में— 0 4 8 11 15 17 20 22
आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ स रे॑ ग॑ म॑ ध ध नि सं
आदिम स्वर से दूरी
सेवर्ट्स में— 0 51 102 148 199 227 273 301
मेल नहीं

21. षड्जग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ रे ग म प ध नि स रे
आदिम स्वर से दूरी
श्रुतियों में— 0 2 6 10 13 17 19 22
आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ स रे ग म॑ प ध॑ नि स
आदिम स्वर से दूरी नाटकप्रिया
सेवर्ट्स में— 0 28 79 130 176 227 250 301

षड्जग्रामीय साधारणी (अन्तर गान्धार तथा काकली निषाद से युक्त) मूर्च्छनाएँ ही मध्यमग्रामीय सान्तरा मूर्च्छनाएँ बन जाती हैं।

षड्जग्रामीय साधारणी अथवा मध्यमग्रामीय सान्तरा मूर्च्छनाएँ

22. षड्जग्रामीय संज्ञाएँ— स रे ग म प ध नि सं
मध्यमग्रामीय संज्ञाएँ—म प् ध नि स रे ग ग
आदिम स्वर से दूरी
श्रुतियों में— 0 3 7 9 13 16 20 22
आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ —स रे ग म प ध नि स बिलावलII
आदिम स्वर से दूरी
सेवर्ट्स में— 0 46 97 125 176 222 273 301

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

23. षड्जग्रामीय संज्ञाएँ— नि स रे ग म प ध नि
मध्यमग्रामीय संज्ञाएँ—ग म प् ध नि स रे ग
आदिम स्वर से दूरी
श्रुतियों में— 0 2 5 9 11 15 18 21
आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ —स रे ग म मं ध नि सं मेल नहीं
आदिम स्वर से दूरी
सेवर्ट्‌स में— 0 28 74 125 153 208 250 301

24. षड्जग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ ध नि स रे ग म प ध
मध्यमग्रामीय स्वर-संत्राएँ रे ग म प् ध नि स रे
आदिम स्वर से दूरी
श्रुतियों में— 0 4 6 9 13 15 19 22
आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ—स रे′ ग म प ध नि सं आसावरी
आदिम स्वर से दूरी
सेवर्ट्‌स में— 0 51 79 125 176 204 255 301

25. षड्जग्रामीण स्वर-संज्ञाएँ प ध नि स रे ग म प
मध्यमग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ स रे ग म प् ध नि स
आदिम स्वर से दूरी
श्रुतियों में— 0 3 7 9 12 16 18 22
आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ—स रे ग म प् ध नि सं खमाज III
आदिम स्वर से दूरी
सेवर्ट्‌स में— 0 46 97 125 171 222 250 301

26. षड्जग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ म प ध नि स रे ग म
मध्यमग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ नि स रे ग म प् ध नि
आदिम स्वर से दूरी
श्रुतियों में— 0 4 7 11 13 16 20 22
आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ—स रे′ ग मं प ध नि सं कल्याण III
आदिम स्वर से दूरी
सेवर्ट्‌स में— 0 51 97 148 176 222 273 301

27. षड्जग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ ग म प ध नि स रे ग
मध्यमग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ ध नि स रे ग म प् ध
आदिम स्वर से दूरी
श्रुतियों में— 0 2 6 9 13 15 18 22
आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ—स रे ग म प ध नि सं भैरवी
आदिम स्वर से दूरी
सेवर्ट्‌स में— 0 28 79 125 176 204 250 301

28. षड्जग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ रे ग म प ध नि स रे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मध्यमग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ प् ध नि स रे ग म प्
आदिम स्वर से दूरी
श्रुतियों में— 0 4 6 10 13 17 19 22
आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ—स रे॑ ग म॑ प ध॑ नि सं काफ़ी
आदिम स्वर से दूरी
सेवर्ट्स में— 0 51 79 130 176 227 255 301

मध्यग्रामीय काकली निषाद का कोई उपयोग षड्जग्रामीय दृष्टि से नहीं होता। अतः मध्यमग्रामीय सकाकली और मध्यमग्रामीय साधारणी (अन्तर गान्धार और काकली निषाद से युक्त) मूर्च्छनाओं के स्वर षड्जग्रामीय मूर्च्छनाओं में प्राप्त नहीं होते।

मध्यमग्रामीय सकाकली मूर्च्छनाएँ :

29. मध्यमग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ म प् ध नि स रे ग म
आदिम स्वर से दूरी
श्रुतियों में— 0 3 7 11 13 16 18 22
आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ—स रे ग म॑ प ध नि सं वाचस्पति
आदिम स्वर से दूरी
सेवर्ट्स में— 0 46 97 148 176 222 250 301

30. मध्यमग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ ग म प् ध नि स रे ग
आदिम स्वर से दूरी
श्रुतियों में— 0 4 7 11 15 17 20 22
आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ—स रे॑ ग म॑ ध ध नि स मेल नहीं
आदिम स्वर से दूरी
सेवर्ट्स में— 0 51 97 148 199 227 273 301

31. मध्यमग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ रे ग म प् ध नि स रे
आदिम स्वर से दूरी
श्रुतियों में— 0 2 6 9 13 17 19 22
आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ—स रे ग म प ध॑ नि स
आदिम स्वर से दूरी
सेवर्ट्स में— 0 28 79 125 176 227 255 301 चक्रवाक

32. मध्यमग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ स रे ग म प् ध नि सं
आदिम स्वर से दूरी
श्रुतियों में— 0 3 5 9 12 16 20 22
आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ—स रे ग म प् ध नि सं गौरी
आदिम स्वर से दूरी मनोहरी
सेवर्ट्स में— 0 46 74 125 171 222 273 301

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

33. मध्यमग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ नि स रे ग म प् ध निं
आदिम स्वर से दूरी
श्रुतियों में— 0 2 5 7 11 14 18 22
आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ—स रे ग गं मं' ध नि सं मेल नहीं
आदिम स्वर से दूरी
सेवर्ट्स में— 0 28 74 102 153 199 25० 3०1

काकली निषाद कभी अंश या स्थायी नहीं होता, अतः यह मूर्च्छना गणनामात्र के लिए है।

34. मध्यमग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ ध नि स रे ग म प् ध
आरम्भिक स्वर से दूरी
श्रुतियों में— 0 4 6 9 11 15 18 22
आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ—स रे' ग म मं ध नि स मेल नहीं
आदिम स्वर से दूरी
सेवर्ट्स में— 0 51 29 125 153 204 250 301

35. मध्यमग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ प् ध नि स रे ग म प्
आदिम स्वर से दूरी
श्रुतियों में— 0 4 8 10 13 15 19 22
आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ—स रे' गं मं प ध नि सं चारुकेशी
आदिम स्वर से दूरी
सेवर्ट्स में— 0 51 102 130 176 204 255 301

मध्यमग्रामीय साधारणी मूर्च्छनाएँ

36. मध्यमग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ म प् ध नि स रे ग म
आदिम स्वर से दूरी
श्रुतियों में— 0 3 7 11 13 16 20 22
आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ—स रे ग मं प ध नि सं कल्याण IV
आदिम स्वर से दूरी
सेवर्ट्स में— 0 46 97 148 176 222 273 301

37. मध्यमग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ ग म प् ध नि स रे ग ऋषभप्रिया
आदिम स्वर से दूरी
श्रुतियों में— 0 2 5 9 13 15 18 22
आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ—स रे ग म प ध नि स
आदिम स्वर से दूरी
सेवर्ट्स में— 0 28 74 125 176 204 250 301

38. मध्यमग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ रे ग म प ध नि स रे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आदिम स्वर से दूरी
श्रुतियों में— 0 4 6 9 13 17 19 22 काफ़ी
आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ—स रे॑ ग म प धं नि सं
आदिम स्वर से दूरी
सेवर्ट्स में— 0 51 79 125 176 227 255 301

39. मध्यमग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ स रे ग म प् ध नि स
आदिम स्वर से दूरी
श्रुतियों में— 0 3 7 9 12 16 20 22
आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ—स रे ग म प् ध नि सं बिलावल
आदिम स्वर से दूरी
सेवर्ट्स में 0 46 97 125 171 222 273 301

40. मध्यमग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ नि स रे ग म प् ध नि
आदिम स्वर से दूरी
श्रुतियों में— 0 2 5 9 11 14 18 22
आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ—स रे ग म म ध नि सं मेल नहीं
आदिम स्वर से दूरी
सेवर्ट्स में— 0 28 74 125 153 199 250 301

41. मध्यमग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ ध नि स रे ग म प् ध
आदिम स्वर से दूरी
श्रुतियों में— 0 4 6 9 13 15 18 22 आसावरी
आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ—स रे ग म प ध नि सं
आदिम स्वर से दूरी
सेवर्ट्स में— 0 51 79 125 176 204 250 301

42. मध्यमग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ प् ध नि स रे ग म प्
आदिम स्वर से दूरी
श्रुतियों में— 0 4 8 10 13 17 19 22
आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ—स रे॑ गं मं प धं नि सं
आदिम स्वर से दूरी
सेवर्ट्स में— 0 51 102 130 176 227 255 301

इन बयालीस स्वरावलियों में 16, 23, 33, 37 और 40 संख्यावाली स्वरावलियों का उपयोग भरत, मतङ्ग और शार्ङ्गदेव की स्वरावलियों में नहीं होता, क्योंकि इनके आरम्भ के स्वर अन्तर गान्धार और काकली निषाद हैं, अवशिष्ट 39 स्वरावलियों का उपयोग सम्भव है।[2]

इन स्वरावलियों से प्राप्त स्वरों को यदि क्रमशः रख दिया जाये तो हमें निम्नलिखित स्वर प्राप्त होंगे, षड्ज के पश्चात् प्रत्येक स्वर की दूरी भी प्रत्येक स्वर के साथ दी जा रही है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सं, रे (28), रे (46), रे′ (51), ग (74), ग (79), ग (97), गं (102), म (125) मं, (130), मं (148), प् (171), प (176), ध (199), ध (204), ध (222), धं (227), नि (250), नि (255), नि (273), सं (301)।

मं′ (153) की प्राप्ति 13, 16, 17, 23, 33 व 40 स्वरावलियों में होती है, परन्तु इनमें से 16, 23, 33 व 40 स्वरावलियाँ प्रयोज्य नहीं।

प्रयोग की सूक्ष्मता से कभी-कभी रे (23), मं′ (153), निं (275) का भी प्रयोग द्विश्रुतिक स्वरों के विवाद को दूर करने के लिए सदा से होता है, परन्तु इन केशाग्र अन्तरों को मूर्च्छना-निर्माण का आधार नहीं माना गया।

षड्ज और पंचम को अचल मानने और मुक़ाम-पद्धति अपनाने का परिणाम यह हुआ कि मेलवादी सोमनाथ ने यह व्यवस्था दे दी कि एक श्रुति कम या अधिक हो जाये, तो कोई दोष नहीं, फलतः आज भारतीय संगीत में 'पियानो' और 'हार-मोनियम' जैसे अस्पृश्य वाद्यों की अस्पृश्यता दूर हो गयी।

यदि हम इन स्वरावलियों में दाक्षिणात्य वीणा का 'धीर शंकराभरण' ढूँढ़ें तो हमें संख्या '2' की स्वर-मालिका अर्थात् निषाद से आरम्भ होनेवाली स्वर-मालिका में मिल जायेगा। दाक्षिणात्य वीणा में मुक्त तन्त्री की ध्वनि षड्ज मानी जाती है।

यदि हम उत्तर भारतीय वीणा का बिलावल ढूँढ़ना चाहें, तो वह हमें संख्या '12' की स्वरावलि में मिलेगा, जिसका ऋषभ (रे′) और धैवत 'ध' है। उत्तर भारतीय वीणा में मुक्त तन्त्री की ध्वनि को 'म' माना जाता है और षड्ज सातवीं सारिका पर होता है। दोनों स्वरावलियों को साथ-साथ देखें––

धीर शंकराभरण––स रे′ ग म प धं नि स

बिलावल––स रे′ ग म प ध नि सं

धीर शंकराभरण का धैवत चतुःश्रुतिक है, उसका संवाद 'रे″' के साथ है। वहाँ 'ग' और 'धं' में संवाद नहीं, अपितु 'ग' की अपेक्षा धैवत दस श्रुतियों के अन्तर पर स्थित है। इसी प्रकार धीर शंकराभरण में 'म' और 'धं' में आठ श्रुतियों का अन्तर है, सात श्रुतियों का नहीं। संख्या '2' की स्वरावलि देखिए।

बिलावल के 'ग-ध' में संवाद है और 'म-ध' में सप्तश्रुत्यन्तर भी है। 'रे′-ध' संवादी नहीं हैं। संख्या 12 की स्वरावलि देखिये।

वास्तव में धीर शंकराभरण निषाद से आरम्भ होनेवाली षड्जग्राम की शुद्ध मूर्च्छना है और बिलावल मध्यम से आरम्भ होनेवाली षड्जग्राम की सान्तरा मूर्च्छना अथवा निषाद से आरम्भ होनेवाली मध्यमग्राम की शुद्ध मूर्च्छना है।

मूर्च्छनाओं में 'बिलावल' से मिलते-जुलते रूप और भी मिल सकते हैं। बाईसवीं संख्या की स्वरावलि यों है––

स रे ग म प ध नि स

इसमें 'रे″' के स्थान पर 'रे' है, जिसका संवाद पंचम के साथ नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उन्तालीसवीं स्वरावलि हमें 'स, रे, ग, म, प्, ध, नि, सं' देती है, जिसमें 'पं' के स्थान पर 'प्' मिलता है।

विभिन्न स्वरावलियों में हमें कल्याण और उससे मिलते-जुलते हुए रूप यों प्राप्त होते हैं—

(क)	छठी	स्वरावलि	स	रे´	गं	मं	प	धं	नि	सं
(ख)	नवीं	स्वरावलि	स	रे´	ग	मं	प	धं	नि	सं
(ग)	छब्बीसवीं	स्वरावलि	स	रे´	ग	मं	प	ध	नि	सं
(घ)	छत्तीसवीं	स्वरावलि	स	रे	ग	मं	प	ध	नि	सं

(ख) स्वरावलि दक्षिण भारतीय मेचकल्याणी है, जिसमें 'ग-धं' परस्पर संवादी नहीं हैं। 'ग' स्वरावलि हिन्दुस्तानी कल्याण है, जो उत्तर भारतीय वीणा में मिलेगा। 'क' और 'घ' स्वरावलियाँ 'मेल' या 'ठाठ' के अन्तर्गत नहीं आतीं, मूर्च्छनाओं में ही मिलती हैं।

कुछ स्वरावलियों में खमाज और उससे मिलते-जुलते रूप यों दिखायी देंगे—

(क)	पाँचवीं	स्वरावलि	स	रे´	ग	म	प	ध	नि	सं
(ख)	आठवीं	स्वरावलि	स	रे	ग	म	प	ध	नि	सं
(ग)	पचीसवीं	स्वरावलि	स	रे	ग	म	प्	ध	नि	सं
(घ)	बयालीसवीं	स्वरावलि	स	रे´	ग	मं	प	ध	नि	सं

'क' स्वरावलि उत्तर भारतीय वीणा का खमाज है, जिसके 'रे´-ध' परस्पर असंवादी हैं। 'ख' तथा 'ग' स्वरावलियाँ मूर्च्छनाओं में ही हैं, यही स्थिति 'घ' स्वरावलि की है, जिसमें 'म' न होकर 'मं' है।

दाक्षिणात्यों का काम्भोजी मूर्च्छनाओं में नहीं है, वह वीणाओं पर बारह अचल सारिकाओं के विधान का परिणाम है।

काफ़ी और उससे मिलते-जुलते रूप मूर्च्छनाओं में इस प्रकार हैं—

(क)	प्रथम	स्वरावलि	स	रे	ग	म	प	ध	नि	सं
(ख)	ग्यारहवीं	स्वरावलि	स	रे	ग	म	प्	ध	नि	सं
(ग)	अट्ठाईसवीं	स्वरावलि	स	रे´	ग	मं	प	धं	नि	सं
(घ)	अड़तीसवीं	स्वरावलि	स	रे´	ग	म	प	धं	नि	सं

'घ' स्वरावलि दाक्षिणात्यों का खरहरप्रिया है। उत्तर भारतीय वीणा का काफ़ी बारह अचल सारिकाओं के स्थापन का परिणाम है।

आसावरी और उससे मिलती-जुलती स्वरावलियाँ भी मूर्च्छनाओं में मिलेंगी—

(क)	चौथी स्वरावलि	स	रे	ग	म	प	ध	नि	स
(ख)	चौदहवीं स्वरावलि	स	रे´	ग	मं	प	ध	नि	स
(ग)	इकतालीसवीं स्वरावलि	स	रे´	ग	म	प	ध	नि	सं

'ग' स्वरावलि उत्तर भारतीय वीणा का आसावरी है। दाक्षिणात्यों का नट-भैरवी अचल सारिकाओं के स्थापन का परिणाम है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

वारह् स्वरों के ईरानी नाम[1] और उनमें दस हिन्दुस्तानी ठाठ

ईरानी नाम—	रास्त	शह्नवाज	दोका	कुर्द	सीका	गिरका	हिजाज़	नवा	हिसार	हुसेनी	अगनू	नीम माहुर
हिन्दुस्तानी नाम	स	रे॒	रे	ग॒	ग	म	म॑	प	ध॒	ध	नि॒	नि
कल्याण	स		रे		ग		म॑	प		ध		नि
बिलावल	स		रे		ग	म		प		ध		नि
खमाज	स		रे		ग	म		प		ध	नि॒	
काफ़ी	स		रे	ग॒		म		प		ध	नि॒	
आसावरी	स		रे	ग॒		म		प	ध॒		नि॒	
भैरवी	स	रे॒		ग॒		म		प	ध॒		नि॒	
मारवा	स	रे॒			ग		म॑	प		ध		नि
पूर्वी	स	रे॒			ग		म॑	प	ध॒			नि
तोड़ी	स	रे॒		ग॒			म॑	प	ध॒			नि
भैरव	स	रे॒			ग	म		प	ध॒			नि

1. वेंकटमखी ने इन्हीं वारह् स्वरों के आधार पर अपने बहत्तर मेलों का निर्माण किया।

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri
Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

हिन्दुस्तानी ठाठों के विभिन्न नाम

ठाठ	लोचन	अहोवल	रामामात्य	पुण्डरीक	श्रीकण्ठ	सोमनाथ	रघुनाथ	वेंकट मखी	तुलजा नरेश
एमन	ईमन	कल्याण	×	×	×	×	×	कल्याणी	कल्याणी
बिलावल	केदार	शंकरा-भरण	सारंगनाट केदार गौड	केदार	केदार	कांबोदी/ मल्लारी	शंकराभरण	शंकराभरण	शंकराभरण
खमाज	कर्णाट	श्रीराग	×	श्रीराग	कर्णाट गौड	कर्णाट गौड	काम्भोजी, केदार गौड	काम्भोजी	काम्भोजी
काफ़ी	भैरवी	शुद्धमेल	श्री	मालव कैशिक/श्री	श्री	श्री	श्री	श्री	श्री
आसावरी	मुखारी	भैरवी	हिन्दोल	हिन्दोल	वसन्त	×	भैरवी	भैरवी, आहीरी	
भैरवी	तोड़ी	×	×	तोड़ी/कामोद/ हिजेज/हिन्दोल	×	तोड़ी	×	भूपाल	×
मारवा	×	×	×	×	×	×	×	×	×
पूर्वी	घनाश्री	वराटी	शुद्ध रामक्री	शुद्ध रामक्री	शुद्ध रामक्री	शुद्ध रामक्री	शुद्ध रामक्री	शुद्ध रामक्री	शुद्ध रामक्री
तोड़ी	×	×	×	×	×	शुद्ध वराटी	×	पंतुवराली	सिन्धु रामक्री
भैरव	गौरी	गौरी मालव	मालवगौल	मालव गौड/ गौडी देशिकार	मालव गौड	वसंत/ मालव गौड	गुर्जरी	गौड	मालव गौड

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri
Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भैरवी और उससे मिलती-जुलती स्वरावलियाँ भी विभिन्न मूर्च्छनाओं में मिलेंगी—

(क) सातवीं स्वरावलि	स	रे	ग	म॑	प	ध	नि	सं
(ख) दसवीं स्वरावलि	स	रे	ग	म	प	ध	नि	सं
(ग) सत्ताईसवीं स्वरावलि	स	रे	ग	म	प	ध	नि	सं

'ग' स्वरावलि दाक्षिणात्यों की तोड़ी है, हिन्दुस्तानी वीणा की भैरवी बारह अचल सारिकाओं का परिणाम है।

भैरवी, पूर्वी, तोड़ी और मारवा भरत और शार्ङ्गदेव की मूर्च्छनाओं में नहीं हैं क्योंकि इन ठाठों में 'रे-ग', 'ध-नि' और 'ग-म' जैसे अन्तराल पंचश्रुतिक हैं, मूर्च्छनाओं में बड़े से बड़ा अन्तराल चतुःश्रुतिक होता है, पूर्वोक्त चार ठाठ इन मूर्च्छनाओं से प्राप्त बीस स्वरान्तरालों में मिल सकते हैं।

इन मूर्च्छनाओं में तीसरी, तेरहवीं, सोलहवीं, सत्रहवीं, बीसवीं, तेईसवीं, तीसवीं, तैंतीसवीं, चौंतीसवीं स्वरमालिकाएँ मेलों के लक्षण में नहीं आतीं और मं तथा प् से युक्त स्वरमालिकाएँ भी मेलवादियों के लिए विचित्र हैं, परन्तु इनका निर्माण वैज्ञानिक पद्धति से हुआ है।

मुक़ाम-पद्धति अपनाने के कारण ही हम आज इन स्वरावलियों को भूल गये हैं।

प्रस्तुत सारणी में ध्यान देने योग्य तथ्य निम्नलिखित हैं—

1. हमारे दसों ठाठों का ग्रहण किसी दाक्षिणात्य आचार्य ने नहीं किया। यहाँ तक कि वेंकटमखी जैसे बहत्तर मेलों के आविष्कारक आचार्य ने भी मारवा ठाठ का कोई राग नहीं लिखा है, अर्थात् तब मारवा ठाठ का कोई राग किसी सम्प्रदाय में नहीं था।
2. हमारे कल्याण ठाठ का वर्णन रामामात्य, पुण्डरीक, श्रीकण्ठ और सोमनाथ नहीं करते, अर्थात् अकबरकालीन अहोबल या तो इसका वर्णन करते हैं या औरंगज़ेबकालीन वेंकटमखी। यह तथ्य सिद्ध करता है कि वेंकटमखी के गुरु तानप्पा का सम्प्रदाय उत्तर भारत से अधिक प्रभावित था।
3. हमारे भैरव को वेंकटमखी गौड कहते हैं, अन्य दाक्षिणात्यों की भाँति 'मालव-गौड' नहीं।
4. वर्तमान तोड़ी ठाठ का वर्णन सबसे पहले जहाँगीरकालीन सोमनाथ करते हैं, परन्तु उसे शुद्ध वराटी कहते हैं, जबकि वेंकटमखी के शब्दों में यह पन्तुवराली और तुलजा नरेश के शब्दों में यह शुद्ध रामक्री है।
5. हमारे भैरवी ठाठ का वर्णन अहोबल, रामामात्य, श्रीकण्ठ, रघुनाथ और तलजा नरेश के ग्रन्थों में नहीं है, जबकि लोचन और सोमनाथ इसे तोड़ी कहते हैं और वेंकटमखी 'भूपाल'।
6. रामामात्य के अतिरिक्त खमाज सबके ग्रन्थों में है।
7. हमारे भैरव, पूर्वी और बिलावल ठाठ का वर्णन सबने किया है। सोलहवीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शती में पुरन्दरदास के द्वारा भैरव ठाठ दक्षिण में पहुँचा। वास्तव में यह स्वरावलि मुसलमानों के द्वारा 'मालवा' और 'गौड' में प्रवर्तित हुई थी, इसीलिए इसका नाम मालवगौड पड़ा। 'गौडी' शब्द का अर्थ गौडदेशीय है, 'गौरी' शब्द गौडी का अपभ्रंश है। अहोवल ने इसे मालव भी कहा है। मुसलमान सूफ़ियों की एक शाखा ने इस ठाठ को गुजरात में प्रवर्तित किया, अतः रघुनाथ इसे गुर्जरी कहते हैं।

8. एक ही स्वरावलि के विभिन्न प्रदेशों में विभिन्न नाम रहे हैं।

सन्दर्भ

1. देखिए, भरत का संगीत-सिद्धान्त, पृ. 12। सितार पर इन नवों स्वरों को स्थापित करने के लिए देखिए, 'भ. सं. सि.', पृ. 15।
2. तिस्रो द्वे च चतस्रश्च चतस्रस्तिस्र एव च।
   द्वे चतस्रश्च षड्जाख्ये ग्रामे श्रुतिनिदर्शनम् ॥ नाट्यशास्त्र
   'चतुश्चतश्चतुश्चैव षड्जमध्यमपंचमाः' इत्यादि श्लोक न तो भरत का है न शार्ङ्गदेव का। इस श्लोक में सप्तक के स्वरों का क्रम नहीं है। भरत का विधान विज्ञानसम्मत है।
3. इस स्पष्टीकरण के पश्चात् 'संगीत-रत्नाकर' के जाति-भेदों और रागों का स्पष्टीकरण सम्भव है। योग्य और अधिकारी व्यक्ति शोध-छात्रों से यह कार्य करा सकते हैं। यह कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होगा और यही शार्ङ्गदेव जैसे पुण्यश्लोक आचार्यों का वास्तविक तर्पण है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सहायक ग्रन्थ-सूची

1. अकवरी दरवार के हिन्दी-कवि, डॉ. सरयूप्रसाद अग्रवाल, लखनऊ विश्व-विद्यालय।
2. अरब और हिन्द के तअल्लुकात, सैयद सुलेमान नदवी, हिन्दुस्तानी एकेडमी, यू. पी.।
3. आदि तुर्ककालीन भारत, अतहर अब्बास रिज़वी, इतिहास-विभाग, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़।
4. इस्लाम की ज़िन्दा तहरीक चिश्तियत, अब्दुल् ग़फ़ूर ग़ोरी, बारगाह अदब, कराची।
5. उत्तर तैमूरकालीन भारत, अतहर अब्बास रिज़वी, इतिहास-विभाग, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़।
6. उत्तर भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास, भातखण्डे, संगीत-कार्यालय, हाथरस।
7. उर्दू के नश्केनुमा में सूफ़ियाए-कराम का काम, डॉ. अब्दुल् हक़, अंजुमन तरक्किए-उर्दू, अलीगढ़।
8. औरंगज़ेबनामा, अनुवादक मुंशी देवीप्रसाद, खेमराज श्रीकृष्णदास, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्वई।
9. किताब नौरस, इब्राहीम आदिलशाह (द्वितीय), संगीत नाटक एकेडमी, दिल्ली।
10. क़िस्सा हुस्नोदिल, मुल्ला वजही, सं. जावेद वाशिष्ठ, ऐतक़ाद पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
11. खिलजीकालीन भारत, अतहर अब्बास रिज़वी, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़।
12. खुलासतुल्ऐश आलमशाही, हस्तलिखित, रज़ा लायब्रेरी, रामपुर।
13. ग़िज़ाले राना, जावेद वाशिष्ठ, किताव-भवन, कलाँ महल, दिल्ली।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

14. चतुर्दण्डिप्रकाशिका, वेंकटमखी, म्यूज़िक एकेडमी, मद्रास।
15. चेहल रोज़ा, हरदेव (अहमद अयाज़) निज़ामी बेसरी में उद्धृत।
16. जहाँगीरनामा, अनुवादक मुंशी देवीप्रसाद, भारतमित्र प्रेस, कलकत्ता।
17. ताजुल् हक़ायक़, मुल्ला वजही, सं. डॉ. नूरुस्सईद अख़्तर, अलवी बुक डिपो, बम्बई।
18. तुग़लककालीन भारत, भाग प्रथम और द्वितीय, अतहर अब्बास रिज़वी, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़।
19. तुज़ुके जहाँगीरी, अलेक्ज़ेण्डर रोजर्स कृत इंगलिश-अनुवाद, 1909 ई.।
20. तैत्तिरीय ब्राह्मण।
21. दकन में उर्दू, नसीरुद्दीन हाशमी, नसीम बुक डिपो, लखनऊ।
22. दकनी अदब की तारीख़, डॉ. मुहीउद्दीन क़ादिरी 'ज़ोर', बुक इम्पोरियम, उर्दू बाज़ार, दिल्ली।
23. दी साइंस ऑव् म्यूज़िक, के. वासुदेव शास्त्री, रिसर्च पब्लिकेशन्स, तंजोर।
24. ध्वनि और संगीत, ललितकिशोर सिंह, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।
25. नग़मातुल्-हिन्द, साहबज़ादा अशफ़ाक अली खाँ, निज़ामी प्रेस, लखनऊ।
26. नादिरातिशाही, सम्राट् शाह आलम, रज़ा-लायब्रेरी, रामपुर।
27. निज़ामी बेसरी, ख़्वाजा हसन निज़ामी, दरगाह शेख निजामुद्दीन चिश्ती, दिल्ली।
28. पुरानी दिल्ली के हालात, दरगाह क़ुली खाँ, अनुवादक, ख़्वाजा हसन निज़ामी।
29. बादशाहनामा (हस्तलिखित), रज़ा-लायब्रेरी, रामपुर।
30. भारत का संगीत-सिद्धान्त, बृहस्पति, हिन्दी-समिति, सूचना-विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ।
3'. भरत-कोष, प्रो. रामकृष्ण कवि, देवस्थान, तिरुपति।
32. भारत का इतिहास (द्वितीय भाग), डॉ. ईश्वरी प्रसाद, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।
33. भातखण्डे-संगीतशास्त्र (चारों भाग), संगीत कार्यालय, हाथरस।
34. मअदन् उल् मूसिक़ी, मुहम्मद करम इमाम, हिन्दुस्तानी प्रेस, लखनऊ।
35. मआसिरुल् उमरा, अनुवादक ब्रजरत्नदास।
36. मध्ययुग का इतिहास, डॉ. ईश्वरी प्रसाद, इण्डियन प्रेस, प्रयाग।
37. मानसोल्लास, सोमेश्वर, ओरियण्टल इंस्टीच्यूट, बड़ौदा।
38. मिराति आफ़ताबनुमा (हस्तलिखित), रज़ा लायब्रेरी, रामपुर।
39. मिराति सिकन्दरी (हस्तलिखित), रज़ा लायब्रेरी, रामपुर।
40. मुग़लकालीन भारत (बाबर), अतहर अब्बास रिज़वी, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

41. मुग़ल राजमहलों का जीवन, भगवतीप्रसाद पांथरी, किताब महल, प्रयाग।
42. मुन्तखबुत्तवारीख़, मुल्ला अब्दुल् क़ादिर बदायूनी, 'लो' कृत अंग्रेज़ी अनुवाद।
43. मुसद्दस बेनज़ीर, मुहम्मदअली ख़ाँ असर, असर पब्लिशिंग हाल, रामपुर।
44. रस-कौमुदी, श्रीकण्ठ, ओरियण्टल इंस्टीट्यूट, बड़ौदा।
45. राग-माला (हस्तलिखित), चित्रलिपि, संगीत-नाटक एकेडमी, दिल्ली।
46. राग-विवोध, सोमनाथ, अडयार लायब्रेरी, मद्रास।
47. रिसाला समा व मज़ामीर, क़ाज़ी सनाउल्लाह पानीपती, पाक एकेडमी, कराची।
48. रूपरस, जावेद वाशिष्ठ, बुक सर्विस, दिल्ली।
49. लक्ष्य संगीत, भातखण्डे, मलबार हिल, बम्बई।
50. श्रीमद्भागवत, गीता प्रेस, गोरखपुर।
51. सरमाप: इशरत, रज़ा लायब्रेरी, रामपुर।
52. सहसरस, बख्शूनायक, संकलक सम्राट् शाहजहाँ, सं. कु. डॉ. प्रेमलता शर्मा, सं. ना. एकादमी, दिल्ली।
53. संगीत चिन्तामणि, बृहस्पति एवं सुमित्राकुमारी, संगीत कार्यालय, हाथरस।
54. संगीत-दर्पण, दामोदर, संगीत कार्यालय, हाथरस।
55. संगीत-पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन, भातखण्डे, संगीत कार्यालय, हाथरस।
56. संगीत-पारिजात, अहोबल, संगीत कार्यालय, हाथरस।
57. संगीत-पारिजात, अहोबल (हस्तलिखित की टंकित प्रतिलिपि), हिन्दू वि. वि., संगीतशास्त्र विभाग।
58. संगीत-रत्नाकर, प्रथम और द्वितीय खण्ड, अडयार लायब्रेरी, मद्रास।
59. संगीत-शास्त्र, के. वासुदेव शास्त्री, हिन्दी समिति, सूचना-विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ।
60. संग्रह-चूड़ामणि, गोविन्द, सं. एस. सुब्रह्मण्य शास्त्री।
61. सियरुल् औलिया, निज़ामी बेसरी में उद्धृत।
62. षड्राग चन्द्रोदय, पुण्डरीक, भातखण्डे द्वारा उद्धृत।
63. स्वरमेल कलानिधि, रामामात्य, संगीत कार्यालय, हाथरस।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नामानुक्रमणिका

अकबर 21-22, 29, 45, 48-50, 63, 67-68, 72-74, 80, 91, 99, 100, 110
अकबर (द्वितीय) 29, 78, 93
अखी सिराज अहमद 43
अच्छन महाराज 94
अजीजन 93
अजीम खाँ 94
अहमद खाँ 63
अदारंग 22
अधावन 87
अनूठा 77
अन्धा 77
अफजल 114
अबुल फ़ज़्ल 63, 73-74, 97, 99
अब्दुरज़्ज़ाक 40
अबुल हसन की प्रेयसी 77
अबूहसन तानाशाह 113
अब्दुल 114
अब्दुल कुद्दूस गंगोही 110
अब्दुल्ला अल् हुसेनी 112
अब्दुल्लाह कुतुबशाह 30, 49, 52, 67, 113
अब्दुल्लाह मरवादीद, ख्वाजा 70
अब्बासी 93
अब्भू नायक 63
अमाग़ी 114
अमीन 114, 115
अमीनुद्दीन आला 108, 110
अमीर 93
अमीर अली 81, 93
अमीरजान 86, 93
अमीर खाँ 82, 85-87, 89, 93, 94
अमीर खुसरो 17, 24, 28, 36-39 60, 63, 65-66, 91, 104, 111
अमीर मीनाई 93
अयोध्याप्रसाद पखावजी 94
अरबे बाई 72
अर्जुन 32
अलाउद्दीन 27, 37
अलाउद्दीन द्वितीय 40, 60, 112
अलाउद्दीन खाँ 95
अलाउद्दीन खिलजी 17, 21, 28,
अलाउद्दीन शाह 112
अलाउद्दीन हसन बहादुरशाह (प्रथम) 65
अली 114

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अली (द्वितीय) 114
अली आदिलशाह 46, 49
अली आदिलशाह (द्वितीय) 52, 115
अलीजान 93
अली नकी खाँ 82
अलीबख्श 86
अली बहादुर, नवाब 82
अलीमर्दान खाँ 75
अलीमुल्लाह खाँ 84
अली मुहम्मद खाँ 92
अल्बेरूनी 20, 36, 57
अल्ताफ़ 60
अल्लाहबन्दे 77
अल्लाहरक्खी 93
अल्लू खाँ 93
अशफाक अली ख़ाँ 94
असगर अली खाँ 88
असदुल्लाह 'वजही' 113
'असीर' 93
अहमद 113
अहमद अली खाँ 81, 82, 87-88, 93
अहमदजान खाँ थिरकुआ 94
अहमदशाह 66, 77, 112
अहमदशाह अब्दाली 92
अहमदशाह गुजराती 30
अहमदशाह बहमनी 30
अहसानुल्लाह, मौलवी 81
अहोबल 43-45, 52, 74, 133-134
आगा इस्माईल 89
आगा मुहम्मद अली 89
आज़री मलिकुश्शुअरा 112
आजिज 113
आदम खाँ 48
आ़दमशाह ग़ुजराती 104
आदिलशाह 114
आदिब अली ढारी 89
आलम 77
आलमगीर सानी 77
आलमशाह 110
आलमशाह (द्वितीय) 22
आसफुद्दौला 50, 80, 81, 82, 93
इनायत हुसैन खाँ 94
इबाद मुहम्मद कासिम खानी 76
इब्ननिशाती 113
इब्नेबत्तूता 61
इब्राही़म आदिलशाह प्रथम 45, 114
इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय 21, 50, 68, 74, 114
इब्राहीम कुली कुतुबशाह 46, 67, 113
इब्राहीम खाँ 77, 86
इब्राहीम लोदी 45, 98
इब्राहीम शर्की 21
इमाम अबूहनीफ़ा 31
इमाम बांदी 85
इम्मडि नरसिंह 45
इस्माईल 114
इस्लामशाह सूर 63, 98, 99
ईरज तरसून बरलास 71
ईरानी आगा खुरशीद 89
ईश्वरीप्रसाद, बाबू 86
ईसा खुदादी 60
उतबी 57
उदयसिंह, राणा 63
उदितनारायण, महाराज 81
उमर बेगम 77
उमराव खाँ 82, 85, 86, 89
उमाबाई 77
उर्वशी 32, 67
एमाद 58

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

औरंगजेब 22, 29, 44, 52, 75, 76, 92, 100, 110
औलिया 114
कँवली 67
कुँवर (गामिका) 77
कुँवरदास साहब 87
कजक 72
कदावेल 19
कन्हैया नक्काल 88
कबीर 114
कमरुद्दीन खाँ 92
कमलादेवी 37
कमलाबाई 84
कमालुद्दीन 29
कम्मू 88
करम इमाम 83
करीम 114
करीम खाँ 87, 94
करीम सेन 92
कमालबाई 77
कलीमुल्लाह शाह 112
कल्वे-अली खाँ 93-94
कल्लिनाथ 40, 41, 44, 46-47, 51
कल्लू 87
कसविन 67
काज़िमअली खाँ (आरामुद्दौला) 81, 85, 89, 93
काज़ी सनाउल्लाह पानीपती 33
क़ाज़ी सिराज 40
कावारुख 67
कामबख्श 75
कायमअली 88
कालिदास 17
काले कंका 77
काले नज़ीर खाँ 94
कासिम 72
कासिम अली खाँ 77, 81, 84, 87
किशन खाँ कलावन्त 75
कीरत (राजा) 98
कुजदार 19
कुतबी 113
कुतुब अली उर्फ़ कुतुबुद्दौला 82, 86
कुतुब आलम 110
कुतुबुद्दीन ऐबक 27, 43, 58
कुतुबुद्दीन खिलजी 21, 28, 60
कुतुबुद्दीन 'फीराज' 113
कुतुबुद्दीन बख़्तयार काकी 27
कुदऊसिंह 87
कुदऊसिंह पखावजी 89, 90
कुदरती 115
कादिर 115
कुन्दनलाल पाठक 85
कुम्भनदास 97
कुम्भा, महाराणा 55
कुली कुतुबशाह, सुलतान 45
कुले-मुहम्मद ऊदी 70
कृष्णदेव राय 45, 96
कैकुवाद 20, 21, 24, 59
खजूरबाई 84
खवास 114
खवासी 77
खिज्र खाँ 37, 60, 109
खुदावन्द खुदानुमा 30, 113
खुरशीदबाई 84, 85
खुर्रमदाद मक्खू 74
खुशहाल खाँ 75, 100, 101
खुसरौ खाँ 22, 76
खेमकरण 63
ख्वाजाबख्श 87
गनपतराव 87, 95
गफूर खाँ 94
गयासुद्दीन खिलजी 96

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गयाप्रसाद 94
गयासुद्दीन तुगलक 28, 33, 60, 61, 109
ग़यासुद्दीन बलबन 27, 59
गवासी 113
ग़ालिब 93
गुलबदन 85
गुलाम अब्बास 88
गुलामनबी शोरी 90
गुलाब मुहम्मद 77
गुलाम अली 114
गुलाम इमाम 86
गुलाम मुहम्मद 86
गुलाम मुहम्मद खाँ 93
गुलाम रज़ा 86
गुलाम रसूल 77, 81, 83, 84
गुलाम शादी 70
गुलाम हुसैन खाँ 86
गेसूदराज बन्दानवाज 33, 104
ग़रबुल्लाह 72
गोपाल 63, 97, 98, 99
गोपाल नायक 37, 38, 60
गौरी 67
गोविन्द दीक्षित 22, 53
गोविन्द स्वामी 97
ग्यान खाँ 77
ग्वाल 93
घसीट खाँ 87
घासीराम पखावजी 77
चंचल नैन 67
चतुर नायक 63
चन्दाबाई 85
चन्द्रभागा 87, 94
चमनी 77
चरजू 74
चाँद खाँ 73
चाँदबीबी 67, 68
चैतन्य महाप्रभु 32
चित्रा 85
छज्जू खाँ 81, 83
छबीली 67
छम्मन साहब 87, 94
छतर खाँ 74
छिद्दा खाँ 93
जगदेकमल्ल 22
जगाजोत 65
जगन्नाथ कविराय 75
जट्टो 77, 85
जमशेद कुली 67, 113
जमालुद्दीन मगरिबी 107
जलाल खाँ कूर्ची 73, 98
जलालुद्दीन खिलजी 21, 28, 59
जहाँगीर (सलीम) 22, 50, 67, 68, 74, 98, 99, 100, 106
जहाँदारशाह 76
जहूर खाँ 86, 114
जादी 93
जानबख्श 85
जान मुहम्मद अरताल 71
जानी 77, 84, 94
जाफ़र खाँ 81, 89
जियाउद्दीन बरनी 60
जिल्लल्लाह 113
जीनत 77
जीवन खाँ 81-83
जीसुखबाई 84
जुनैदी 113
ज़ुल्फ़िकार अली खाँ 80
जैन खाँ 72
जैनाबादी बेगम 75
जोतसिंह पखावजी 90
जोधाबाई 48

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

झब्बू 87, 93
तन्नो 77
तबई 113
तरसून अली करावल 72
ताज खाँ 77, 87
तानप्पा 52, 53, 54, 133
तानतरंग खाँ 98-101
तानरस खाँ 82
तानसिंह 85
तानसेन 48, 63, 68, 73, 74, 91, 97-101
तानसेन (रंगीला कालीन) 77
तानाशाह 113
तिलंगन 67
तुराब अली खाँ 82, 85
तूफान (रबाबवादक) 71
तूफान (नैवादक) 72
दकन की पुतली 67
दत्ताराम 93
दरगाही 77
दरिया खाँ 63, 98
दाऊद खाँ 92
दाग 93
दानियाल 68
दारा 75
दिलावर अली खाँ 81
दुख्तर खासा 59
दुर्गविजय सिंह 86
दुर्गा 88
देव (महाकवि) 76
देवलदे वी 37, 60
देवराय (प्रथम) 40, 41, 60
देवराय (द्वितीय) 40
दोस्त तूनक़तार, बाबा 71
दौलत (कवि) 77, 115
दौलत खाँ 63
धंन्ना 77
धन्नूधारी 87
धूमन 84
धोंधू 74
नज़र 32
नज़ीर अली, उस्ताद 78
नज्जू 81.
नत्थन पीरबख्श 83
नत्थू खाँ 94
नत्थे खाँ 83, 84
नन्ददास 97
नन्नी (कलकत्तेवाली) 93
नन्ही 67
नन्हे खाँ 93
नरेश नायक 45
नवाब दरगाह कुली खाँ 76-77
नवाब सालारजंग 88
नवाब हुसेन अली खाँ 80
नसरुल्लाह, काजी 106
नसीरुद्दीन 108
नसीरुद्दीन चिराग देहली 109
नबीबख्श 86
नवाब अली नक़ी खाँ 86
नवाब अली बहादुर 85
नसीरुद्दीन हैदर 83
नाजनीन 67
नादिरशाह 76
नानाराव 84
नारद 23
नारायणदास बैरागी 83
नासिर खाँ पखावजी 87, 94
नासिरुद्दीन 46
नासिरुद्दीन महमूद 27, 109
निज़ामुद्दीन चिश्ती (शेख, ख्वाजा) 20, 27, 33, 43, 59, 65, 98, 103-104, 108-109

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निज़ाम शाह 112
निज़ामी 112
निसार अली 82, 85, 93
नुसरत खातून 59
नुसरत बीबी 59
नुसरती 115
नूरखाँ 83
नूरखाँ चौगोशिया 83
नूर की मूरत 67
नेमत खाँ 'सदारंग' 76, 91
नौरतन 93
पद्मिनी 67
पन्नाबाई 77
पाण्डवी, नायक ९7
पीर मुहम्मद 63
पुण्डरीक 18, 22, 44, 48-50, 52, 73, 133
पुरन्दरदास 134
पृथ्वीराज 20, 23, 27
प्यार खाँ 81-2, 85
प्यारी 67
प्रकाश 85, 88
प्रताप रुद्रदेव काकतीय 38
प्रसादू 88
प्रेमलता शर्मा, डॉ. 75
फकाई 59
फ़क़ीरुल्लाह 75, 100
फ़खरुद्दीन, बाबा 27
फ़ज़्लअलीशाह 82, 100
फ़ज़ील बिन अयाज़, ख्वाजा 31
फज्जू ढारी 88
फ़तहुद्दौला बहादुर 89
फ़ताही 114
फ़रावी 57
फरीदुद्दीन गंजशकर, बाबा 58, 109
फाइज 114
फ़िदाअली, मिर्ज़ा 88
फ़िदा हुसेन खाँ 94
फिरदौसी 57
फिरिश्ता 66
फ़ीरोज़ 112
फ़ीरोज़ खाँ 'अदारंग' 91, 92
फ़ीरोज़ तुग़लक 21, 61, 109
फ़ीरोज़शाह 21, 62
फ़ीरोज़शाह बहमनी 28, 30, 40, 66
फ़ुतूहा 59
फूरन खाँ 87
फैज़ुल्लाह खाँ 92, 93
बख्तयार काकी 108, 109
बख्तर खाँ (उर्फ़ बख्त खाँ) 68, 74, 100, 101
बख्शू 63, 75, 97-99
बख्शू ढारी 87
बनाई 7०
बन्दानवाज़ गेसूदराज़ 43, 68, 107
बन्दीजन 84, 85, 93
बरकत अली उर्फ़ सैंवलिया 86
बरहानुद्दीन चिश्ती 109
बल्लो 88
बशारत अली खाँ 84
बसन्ती 100, 101
बहमनी हिन्दू 67
बहराम 71
बहलोल लोदी 96
बहादुर खाँ 82, 85
बहादुर मलिक 21
बहादुरशाह (प्रथम) 72, 78, 92, 112
बहादुरशाह (उर्फ़ मुअज़्ज़म) 76
बहादुरशाह जफ़र 30
बहादुरशाह गुजराती 21, 63, 98, 99

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बहादुरशाह हुसेन खाँ (जियाउद्दौला)
82, 85-6, 93-4
बाकर 77
बाकर अली खाँ 93
बाजबहादुर (उर्फ़ बायजीद) 63, 71
बाबर 22, 29, 45, 68, 71, 98
बासत खाँ 81, 83, 94
बिलकीस ज़मानी 67
बिसराम खाँ 75, 100, 101
बुक्क 39, 66
बुनियाद हुसेन खाँ 94
बुरहान खाँ फ़ारूक़ी 48
बुरहान निज़ामशाह 46
बुरहान सालिस 50
बुरहानी अमीर खाँ 77
बुरहानी कव्वाल 77
बुरहानुद्दीन ग़रीब (सूफी) 39
बुरहानुद्दीन जानमा 114
बुलाकी 113
बेनीप्रसाद 88
बृहस्पति 95
बैरमखाँ खानखाना 72
बैजू 21, 63, 72, 73, 97-99
बैराम खाँ 99
बोले खाँ 77
भगवान पखावजी 100
भज्जी 77
भरत (मुनि) 38, 46-48, 55, 74,
81, 116, 117-118, 128,
133
भवानीदीन 87
भातखण्डे 54-55, 94-95
भूपत खाँ 100, 101
मंजर, बाबा 27
मंसूर 30
मक्खन 81
मजनूँ नानकणही 77
मजदुद्दीन 108
मतंग 47, 74
मदारी 83
मनसूरा 19
मनिया 77
मनुक्कि 75
मम्मट 17
मम्मी 93
मम्मू 87
मलिक काफूर 38
मलिक खुशनूद 115
मलिक निजामुद्दीन 59
मलिक मुहम्मद जायसी 103
मलिक सुलतान 21
मल्ही 63
मसीत खाँ 86
महबूब 67
महबूब जान 93
महफ़ूजा 19
महमूद 60, 97, 112
महमूद (कव्वाल) 58
महमूद गजनवी 20, 23, 26, 57
महमूद दरियाई 109
महमूद दरियाई बीरपुरी 108
महमूद (द्वितीय) गुजराती 63
महमूद बहमनी 96
महमूद बीगड़ा 45, 96
महमूद (बुगरा खाँ) 59
महमूद किरकीशक़ 72
मस्तूर बेग बक़ावल 71
मानसिंह 73, 89
मानसिंह तोमर 21, 44, 45, 72,
96-98
मानी चकमक 77
मामू कव्वाल 81

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

माहम अनगा 72
माह अवरू 67
माशूक नवाज 93
मिर्जा आविद अली बेग 89
मिर्जा खादिम अली बेग 89
मिर्जा मुहम्मद रजा 88
मिर्जा वाहिद कश्मीरी 88
मिर्जा हिन्दाल 29
मियाँ चाँद 73
मियाँ जानी 81
मियाँ ताहा 62, 96
मियाँ नूरी 114
मियाँ बख्शू 87
मियाँ मम्मन 88
मियाँ लाल 74
मिसरी खाँ ढारी 100
मीर अंजू 70
मीर अहमद 88, 89
मीर अली, सैयद 83
मीर अली हसन 88
मीर कल्लू 88
मीर जकी साहब 88, 89
मीर बबर अली 89
मीर नासिर अहमद 85
मीर सैयद अली 71
मीरान सैयद नूरुल्लाह 62, 96
मीरानजी बीजापुरी 110
मीर रोशन अली 84
मूमिन 93
मेंडू खाँ 83
मेंहदी अली खाँ, हकीम 83
मेंहदी बख्श 88
मेंहदीसेन 92
मेनका 32, 67
मेहर अफरोज 59
मोधूखाँ पखावजी 93
मोहन 67
मौज खाँ 82
मौज खाँ कलावन्त 83
मौलाना असामी 65
मौलाना इल्मुद्दीन 60
मौलाना मीर जान पैवन्दी जर्जंजन 72
मौलाना वज्मी 72
मौलाना सिपहरी 72
मौलाना लतीफ 60
मौलाना हमीदुद्दीन 60
मुंदरू 93
मुअज्जम 115
मुईनुद्दीन कव्वाल 77
मुईनुद्दीन चिश्ती 48
मुईनुद्दीन चिश्ती अजमेरी 58
मुकीमी 114
मुखलिस कुब्सी 72
मुख्तार 115
मुगल खाँ 83
मुज़फ़्फ़रशाह गुजराती 62
मुज़फ्फरशाह द्वितीय 96
मुजाहिदशाह बहमनी 66, 112
मुर्तजा 114
मुनव्वर खाँ 82
मुबारक 109
मुबारक खाँ 109
मुराद अली 82, 93
मुराद खाँ 83
मुलतान 19
मुल्ला अब्दुल कादिर बदायूनी 97, 99
मुल्ला खयाली 113
मुल्ला जाहिर बुखारी 71
मुल्ला मुहम्मद 89
मुल्लू 114
मुश्तरी 67

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुश्ताक 112
मुश्ताक हुसेन खाँ 94
मुहम्मद 59, 114
मुहम्मद अब्दुल्ला खाँ 92
मुहम्मद अली कलावन्त 84
मुहम्मद अली 86
मुहम्मद अली खाँ 82, 94
मुहम्मद अली कुतुबशाह 50
मुहम्मद अली बीनकार 85
मुहम्मद आजम 108
मुहम्मद आजम चिश्ती 108
मुहम्मद आदिलशाह 'अदली' 63, 98, 99
मुहम्मद उस्ताद 74
मुहम्मद क़रम इमाम 80-87, 89-91
मुहम्मद करीम इमाम 97,
मुहम्मद काजी 108
मुहम्मद कुली 113
मुहम्मद अली कुतुबशाह 21, 67, 68
मुहम्मद खाँ 82
मुहम्मद गौरी 23, 27, 58, 58
मुहम्मद गौस 97
मुहम्मद गौस अली खाँ 80
मुहम्मद जान 71
मुहम्मद जोरावर अली खाँ 80
मुहम्मद तुग़लक़ 21, 28, 39, 61, 65, 104, 107, 111
मुहम्मद दिलावर अली खाँ 80, 84
मुहम्मद फ़ज़ल इमाम खाँ 84
मुहम्मद बख्तार 58
मुहम्मद बिन कासिम 19
मुहम्मदशाह (प्रथम) 21, 40, 112
मुहम्मदशाह (द्वितीय) 112
मुहम्मदशाह रंगीला 22, 76, 77, 81, 90, 92
मुहम्मदशाह बहमनी (प्रथम) 66
मुहम्मदशाह बहमनी (द्वितीय) 66
मुहम्मद सईद खाँ 93
मुहम्मद हुसेन 94
मुहिब 113
मुहिब अली बख्शी ख्वाजा 72
रंग खाँ 63
रंग खाँ कलावन्त 75
रंगीली 67
रघुनाथ 39, 133-34
रघुनाथ राव 87
रजब अली 82, 83
रजा अली खाँ 94
रजा हुसेन 94
रजिया सुलताना 109
रजी 77
रजीउद्दीन 65
रतनसिंह (राजा) 81
रमजानी नक्क़ाल 77, 88
रम्भा 67
रसबैन खाँ 75
रहमान कुली खुशबेगी 71
रहमान बाई 77
रहीम 77
रहीम खाँ 77, 82, 85, 89, 93
रहीम खाँ जहानी 77
रहीमनबाई 84, 87
रहीमुल्लाह खाँ 93
रामकृष्ण कवि 46
रामजनी 77
रामदास 63, 73, 74
रामसहाय 83, 84, 86, 88
रामानुजदास 83
रामामात्य 22, 38, 43-49, 51-54, 133
रुक्नुद्दीन 109
रुस्तमी 115

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रूपमती 63
रौशन ज़मीर, मिर्जा 44, 76
लच्छू 97
लज़्ज़त बख़्श 87
लतीफ़ 120
लतीफ मौलाना 58
लतीफ़न 85
लल्लूजी 87
लाल कुँवरि 78
लाल खाँ 75, 100
लालन 67
लाला 67
लाली 88, 95
लुत्फ़ी 115
लोचन 38, 52, 142
लोहंग 98
वका 83
वज़ीर खाँ 82, ९4
वज़ीरन 88
वली उल्लाह शाह 112
वहीद खाँ ९4
वाजपेयी (बनारस निवासी) 86
वाजिद अली शाह 67, 80-83, 87-93
वासुदेव शास्त्री, के. 36
विक्रमाजीत 98, 100
विचित्र खाँ 73
विजय राघव 52
विट्ठल ९6
विद्यारण्य 39, 40
विलास खाँ 74, 75, 91, 99-101
विश्वनाथ सिंह 81
विश्वामित्र 32
वीरमण्डल खाँ 73
वेंकट (प्रथम) 50
वेंकटमखी 22, 37-40, 48-54, 133
वेद 25
वेदव्यास 23
वैजा 19
वैहाकी 57
शक्कर 81-82
शगली 114
शत्रुशल्य 50
शम्सुद्दीन इल्तुतमिश 20, 21, 27, 28
शरफोबाई 84
शहबाज 77
शहाब खाँ 73
शार्ङ्गदेव 36, 46-58, 117, 118, 128, 133
शादी खाँ 85
शाल्व तिम्म 45
शाह अमीनुद्दीन आला 108
शाह अली ज्यू 109
शाह अली पहलवान 27
शाह आलम 108
शाह आलम शाह फखरुद्दीन 29
शाह कमाल 77
शाह कमालुद्दीन मुजरंद वियाबानी 107
शाहकलीमुल्लाह जहानाबादी 29
शाहकुली 70
शाह खादिम शफ़ी 84
शाहजहाँ 22, 29, 67, 75, 110
शाहजी 25
शाह दरवेश घटवादक 77
शाह दानियाल 77
शाह निजामुद्दीन औरंगावादी 29
शाह बुराहनुद्दीन गरीब 104
शाह बुराहनुद्दीन जानम 107, 110
शाहमन 115
शाहमलिक 115
शाह मीरानजी 30, 107

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शाह मीरानजी बीजापुरी 112
शाह मुहम्मद 108
शाह मुहम्मद ज्यू गामधनी 109
शाह रहमतुल्लाह 77
शाहराजू हुसेनी 113
शाह हुसेनी 109
शाह हुस्सामुद्दीन 27
शिवाजी 25
शुजाअत खाँ 77
शुजाअत खाँ सूर 63
शुजाउद्दौला 92
शेख अजीजुल्लाह 105
शेख अदहन 70, 74
शेख़ अब्दुल कुद्दस गंगोट्टी 105
शेख अब्दुल हक चिश्ती 'अलखदास' 105,
शेख अब्दुल्लाह 113
शेख अबूबक्र शिब्दी 33, 60
शेख अली हजूरी 'दातागंज बख्श' 27, 31, 32
शेख इलमुल्हक 108
शेख उस्मान 59
शेख क़दवा 56
शेख कमालुद्दीन 118
शेख कुतुब आलम 30
शेख़ कुतुबुद्दीन बख्तयार काकी 28, 33
शेख़ गुलाम कुतुबद्दीन 30
शेख घूरन 70-71
शेख़ जुनैद बग़दादी 33, 60
शेख जमालुद्दीन 'जुम्मन' 108
शेख़ जलालुद्दीन गंज खाँ 27
शेख नसीरुद्दीन चिराग देहली 28, 29, 33, 65, 66, 104
शेख निजामुद्दीन चिश्ती 28, 39, 60 61
शेख फरीदुद्दीन 60
शेख फरीदुद्दीन गंजशकर 33, 103
शेख बंझू 74
शेख बन्दनवाज़ गेसूदराज़ चिराग़ देहली 28, 30, 66
शेख बहलौल (ग़ौस) 29
शेख बहाउद्दीन जकरिया मुलतानी 20, 33, 59, 66
शेख बहाउद्दीन बाजन 105, 110
शेख वारिकुल्लाह 108
शेख बुराहानुद्दीन ग़रीब 43, 65
शेख महमूद 108
शेख मुईनुद्दीन चिश्ती अजमेरी 23, 27, 28, 33,
शेख मुहम्मद आज़म चिश्ती 29
शेख मुहम्मद गौस 29, 91, 98, 99
शेख मुहम्मद स्वलाह 81
शेख मुहीउद्दीन याह्या मदनी चिश्ती 29
शेख शरफूद्दीन याह्या मनेरी 104
शेख शुर्फुद्दीन बू अली कलन्दर 103, 104, 109
शेख शर्फुद्दीन याह्या 109
बाबा शहाबुद्दीन 27
शेख सलीम 68
शेख सालार मसऊद 26
शेख सिराजुद्दीन 30
शैखी नाई 70
शौकी 'आनन्द खाँ' 74
शोरी, मियाँ 81
शेरशाह सूरी 45
शेरशाह सूर 99
शौकी 114
श्रीकृष्ण 22, 44, 49, 50, 52, 133
श्रीनिवास आयंगर, टी. आर. 38
शृंगारशेखर 22
संवाद खाँ 77
सआदत अली खाँ 83, 87

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सज्जन 67
सज्जाद हुसैन 86
सदरुश्शरीफ़ 65
सदारंग 22, 92
सदाशिव 45
सद्रुद्दीन 112
सनअती 115
समोखनसिंह ९1
सरमस्त, सूफ़ी 27
सरस 77
सरो खुशक़द 67
सरोद खाँ 73
सहज: 77
साँवली 67
साक़ी दराज़ 72
साद 50
सादिक अली खाँ बीनकार 97
सादिक अली खाँ 'राहतुद्दौला' 82, 85, 89, 94
सादी 111
सादुल्लाह खाँ 92
सावित अली 86
सालारजंग खाँ 81
सालिक 114
सिंह भूपाल 37
सिकन्दर 114
सिकन्दर लोदी 21, 28, 62, 96, 110
सिराज (क़ाज़ी) 66
सिराजुद्दीन 108
सीदी मौला (सूफ़ी) 28
सुखबदन 85
सुखीसेन कलावन्त 76
सुजान खाँ 87
सुधीरसेन 101
सुन्दर 67
सुन्दर पाण्डव 38
सुन्दरबाई 84
सुबहान कुली कुतुबशाह 67, 113
सुबहान खाँ 73
सुबुक्तगीन 20
सुब्बा 93
सुरज्ञान खाँ 73
सुरभावन 77
सुलतान 113
सुलतान अली खाँ 83, 84
सुलतान कुली 13
सुलतान मुहम्मद कुली कुतुबशाह 67, 113
सुलतान हुसेन मिर्ज़ा 70
सुलताना 77
सुलेमान 83
सूरतसेन 99, 100, 101
सूरदास 97
सूरदास (गायक) 74
सेढूबाई 84
सेवक 114
सेवर्ट 118
सैयद अजीजुद्दीन हुसेनी 27
सैयद अहमद कबीर 27
सैयद रब्नुर्रसूल 62, 96
सैयद गुलाम अब्बास 80
सैयद महमूद 'महमूद' 113
सैयद मीर अली 80, 88
सैयद मीरान हाशमी 114
सैयद मीरानजी हुसेनीशाह 108
सैयद मुहम्मद अकबर हुसेनी 112
सैयद मुहम्मद इमाम, ख्वाजा 33
सैयद मूसा, ख्वाजा 33
सैयदशाह मोमिन आरिफुल्लाह 27
सैयदशाह हाशिम 'हाशिम' 110
सोना 81

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सोमनाथ 22, 38, 49, 50-52, 54, 68, 73, 133
सोमेश्वर 'महादेवजी' 90
सोहिल सेन 101
हजरत अहमद 58
हजरत कुतबआलम 104
हजरत मुहम्मद (पैगम्बर) 32
हड्डू 77
हद्दू खाँ 83, 84
हमजान 74
हमीदुद्दीन नागौरी, काजी (शेख-मुहम्मद इब्ने अता) 32, 58
हमीर सेन 100-1
हयात सरसनैन 75
हरिदास, स्वामी 97-102
हलाकू 19
हसन खाँ 77
हश्मत जंग 86
हसन (ईरानी शरणार्थी शहजादा) 39, 65
हसन अली सजरी 104
हसन खाँ 86
हसन खाँ ढारी 85, 87
हसन बख्श 86
हसन मुहम्मद 108
हसन मुहम्मद चिश्ती ख्वाजा 29
हसन रज़ा खाँ 81
हस्सू खाँ 83, 93
हाजी सूफी 27
हातम 67
हाफिज अली खाँ 95
हाफ़िज कमालुद्दीन हुसेन 72
हाफ़िज़ नासिर 72
हाफ़िज़ मेहरी बकावली 72
हाफिज़ सुलतान मुहम्मद आख्ता 72
हामिद अली खाँ 94
हारिस 32
हारूंरशीद, खलीफा 31
हींगनजान 93
हींगा 77
हीराबाई 75, 84
हुमायूँ 21, 29, 71, 72, 98, 110, 112
हुलहुल अनीगा 7
हुसेन अली खाँ 84
हुसेन अदी 70
हुसेन खाँ 77, 82
हुसेन निज़ामशाह 46, 49, 52
हुसेनबख्श 88
हुसेन शाह शका 21, 96
हुसेनी 63, 84, 85, 97, 115
हुसेनी ढारी 89
हुसेनी मुहम्मद (द्वितीय) 98
हैदर अली खाँ 96
हैदर खाँ 86, 94
हैदरबख्श 93
हैदर महल 67
हेमूं 63

ooo

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi